मंत्रशक्ति

मंत्रशक्ति

मंत्रशक्ति

[गुरुहरि प.पू. काकाजी महाराज द्वारा लिखित
अंग्रेजी पुस्तक '*The Real Essence of Tantra*'
के
'मंत्रशक्ति' प्रकरण का हिन्दी अनुवाद]

अनुवादक
साध्वी आनंदी

'योगी परिवार अमृत आनंदोत्सव' प्रकाशन

मंत्रशक्ति

© *प्रकाशक :*
अक्षरज्योति महिला केन्द्र, दिल्ली

मूल अंग्रेजी प्रकाशन :
4 जून 1978

हिन्दी अनुवाद प्रथम आवृत्ति :
प.पू. गुरुजी प्राकट्य दिन, 13 मार्च 2009

प्रति : **2500**

मूल्य : **100/-**

प्राप्ति स्थान :

- **श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण मंदिर**
  'ताड़देव', काकाजी लेन, स्वामिनारायण मार्ग, अशोक विहार-III, दिल्ली-110 052 (भारत)
  दूरभाष : 2730 1327, 4709 1281, फॅक्स : 4709 1280
- **अक्षरज्योति महिला केन्द्र**
  'अक्षरज्योति', काकाजी लेन, स्वामिनारायण मार्ग, अशोक विहार-III, दिल्ली-110 052 (भारत)
  दूरभाष : 2730 5199, फॅक्स : 4709 1282
- **योगी डिवाईन सोसाईटी**
  'अक्षरधाम' MTNL के पीछे, हीरानंदानी गार्डन्स, पवई, मुंबई-400 076
  दूरभाष : 2578 2151, 2579 4314 , फॅक्स : 2579 0558
- **Yogi Divine Society USA**
  2437 N, Yeoman St. Waukegan, IL 60087
  Tel. 847-336-6451, Fax: 847-336-4575

टाईप सेटिंग :
स्वामिनारायण प्रिंटर्स
172/26, रिसाल कॉम्प्लेक्स, शिवा मार्किट, पीतमपुरा, दिल्ली-110 034 (भारत)

मुद्रक :
डी. के. फाइन आर्ट प्रेस प्राइवेट लिमिटेड
ए-6, कम्यूनिटी सेन्टर, नीमड़ी कॉलोनी, दिल्ली-110 052

श्री अक्षरपुरुषोत्तम महाराज

अनादि महामुक्त जागास्वामी

अनादि महामुक्त भगतजी महाराज

अनादि महामुक्त अदाश्री

‘गुणातीत ज्ञान का नवनीत’

- किसी का भी (दोष, स्वभाव, प्रकृति, त्रुटियाँ) नहीं देखना।
- (पहले) अपना श्रेय कर लेना।
- परेशानी आए, तो माला फेरनी; लेकिन दूसरे विचार नहीं करना।
- हर एक में निर्दोषबुद्धि रखनी।
- संप, सुहृद्‌भाव और एकता रखनी।
- साक्षात् की महिमा निरंतर गाया करनी।

अर्पण

श्री अक्षरपुरुषोत्तम की युगल उपासना के प्रवर्तक
ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज - ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज
व
गुणातीत समाज के आद्य सर्जक
ब्रह्मस्वरूप काकाजी महाराज – ब्रह्मस्वरूप पप्पाजी महाराज
एवं
ब्रह्मस्वरूपिणी सोनाबा
के
परम पुनीत चरणारविंद में...

प्रस्तावना

भारत की भूमि पर अनेक अवतार पुरुषों एवं संतों का प्रगटीकरण हुआ और उनकी तपस्या, रिद्धि-सिद्धि, शक्ति, सामर्थ्य ने भारतीय संस्कृति को जीवंत रखा है – गौरवान्वित किया है। करीब सवा दो सौ वर्ष पूर्व **भगवान स्वामिनारायण** ने जीवों पर खूब-खूब कृपा करके, न केवल अवतरण लिया; बल्कि जीवंत महामंत्र 'स्वामिनारायण' देकर शाश्वत् रक्षाकवच दे दिया। इससे भी अधिक ***'अपने ब्रह्मस्वरूप संतों द्वारा वे मानवस्वरूप में धरती पर अखंड प्रगट रहेंगे...'*** यह वरदान देकर अपने आश्रितों को सदा सनाथ कर दिया। फलस्वरूप भगवान स्वामिनारायण के रहने के धाम मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी द्वारा अखंड रही परंपरा से अ.म.मु. भगतजी महाराज, अ.म.मु. जागास्वामी, अ.म.मु. अदाश्री, प.पू. शास्त्रीजी महाराज, प.पू. योगीजी महाराज, प.पू. काकाजी महाराज, प.पू. पप्पाजी महाराज, प.पू. हरिप्रसादस्वामिजी, प.पू. प्रमुखस्वामिजी, प.पू. अक्षरविहारीस्वामिजी, प.पू. साहेबजी, प.पू. दिनकरभाई जैसी गुणातीत विभूतियों की अद्‌भुत प्राप्ति सुलभ बनी!

इन ज्योतिर्धरों में से गुरुवर्य योगीजी महाराज की क्रांतिकारी योजना को मानो साकार करने आई दिव्य विभूति गुरुहरि प.पू. काकाजी महाराज अत्यंत तेजस्वी व प्रतिभाशाली और मंत्रदृष्टा या मंत्रसिद्ध ही नहीं, मंत्रस्वरूप थे। उनकी 'ध रियल इसेन्स ऑफ तान्त्र' पुस्तक में **'मंत्रशक्ति'** जैसे अति गहन व जटिल विषय को रॅशनली, फिर भी सरल रूप से आलेखित करके प.पू. काकाजी ने सभी सत्यशोधक जिज्ञासुओं और विशेषतः 'श्री स्वामिनारायण' के आश्रितों को युगों-युगों के लिए ऋणी कर दिया... निहाल कर दिया है!

दुनिया के विभिन्न संप्रदायों के मंदिरों और आश्रमों में अनेकों मंत्र, पूजा, विधियाँ, साधनाएं प्रचलित हैं। उनमें से सबसे अच्छी और सरल कौन-सी? तुरंत फलदायी कौन-सी? सामान्य व्यक्ति जिसे न केवल समझ सके, बल्कि सरलता से आचरण में लाकर स्वयं अनुभूति कर सके, ऐसी रीति या साधना कौन-सी है? ऐसे कई प्रश्नों के बहुत स्पष्ट उत्तर प.पू. काकाजी ने दिए हैं। अध्यात्म की साधना कैसे सचोट, सरल और सुखदायी हो, इस हेतु मार्गदर्शन देते हुए इसकी फॉर्म्युली – उपायों और

समाधानों की तो प.पू. काकाजी झड़ी लगा देते! तभी तो वे सच्चे अर्थ में साधकों के गुरु, मित्र व पथप्रदर्शक बने!

प.पू. साहेब कहते हैं –

'प.पू. काकाजी ने अपनी परावाणी-आशीर्वचनों और कई लेखों द्वारा इतना ज्ञान परोसा है कि बस! अब उसकी जुगाली करा करें...'

तल्लीन होकर लयबद्ध जपनाद करते हुए प.पू. काकाजी के दर्शन करना, वह भी जीवन का एक अमूल्य मौका था। प्रभु के साथ मानो वे वार्तालाप करते हों, यूँ एकाकार होकर धुन करते – करवाते। कितनी भी परेशानी, उदासी में कोई उनके पास जाता, तो वे कहते – *'चलो दो मिनिट धुन कर लें'* और... उसका मन शांत हो जाता-अंतर हल्का हो जाता।

प.पू. गुरुजी तो अकसर कहते भी हैं कि –

हम यदि कहीं से आएंगे और थके होंगे, तो सोचेंगे कि चलो, आज सभा नहीं करेंगे-जल्दी सो जाएं। जबकि प.पू. काकाजी तो कहीं से भी आते, अरे! अमेरिका से चौबीस घंटे की फ्लाईट में सफ़र करके आए होते, तो भी वे आते ही धुन करवाते और धुन करके बोलते – 'फ्रेश हो गए'।

प.पू. हरिप्रसादस्वामिजी भी कहते हैं कि – ***'धुन के तो प.पू. काकाजी राजा थे'!***

वे धुन करते तो उनकी उँगलियाँ नाचने लगतीं, यहाँ तक कि उनका सिल्क का कुर्ता भी ऐसे वाईब्रेट होने लगता – मानो विद्युत संचार हो रहा हो। उनके मुख से सभी ने गीता में भगवान श्री कृष्ण द्वारा कही उक्ति 'यज्ञानां जपयज्ञोस्मि' कई बार सुनी थी और **प.पू. गुरुजी** तो अकसर कहते ही हैं –

'मंत्र का तो वे मूर्तस्वरूप थे और जपयज्ञ उन्हें अत्यधिक प्रिय था...' ।

यूँ मंत्र का जाप करके वे एक पद्धति बताते थे कि मंत्र जाप यदि ऐसे किया जाए, तो हम में भी ऐसी ही दिव्य शक्ति का संचार हो सकता है। वे हमेशा कहा करते –

'छोटी-बड़ी, शुभ-अशुभ सभी क्रियाओं का प्रारंभ भगवान के नाम का नमक डाल कर ही करो।'

और... उनकी यही चाहना थी कि जपनाद से, मन की नीरव भूमिका में रहते हुए हम भगवान के साथ ऐक्य स्थापित कर लें!

स्वामिनारायण मंत्र महाबलवान है। इस मंत्र का यंत्रवत् नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष स्वरूप की स्मृति सहित जाप करना चाहिए। मन की सच्ची शांति, सुख व आनंद का तो यही एकमात्र स्रोत है – 'भगवान को सांगोपांग प्रगटाई विभूति – प्रगट संत की

स्मृति सहित एकचित्त से जाप करें!' **सत्पुरुष के वचन से 'मंत्रजाप' करने से हमारे प्रकृति व प्रारब्ध बदलते हैं, जन्मों की जड़ता पिघलती है – स्वभाव टलते हैं और हमारी पुकार अर्चिमार्ग से प्रभु को तत्काल पहुँचती है।** सभी मंत्रों में 'स्वामिनारायण' महामंत्र सर्वोपरि क्यों है, यह तथ्य भी प.पू. काकाजी ने बहुत ही सुंदर-सरल तरीके से अपने लेखों द्वारा समझाया है।

प.पू. काकाजी द्वारा 'मंत्रशक्ति' के बारे में जो कुछ भी लिखा गया है, वह डंके की चोट पर मानो ऑथेंटिक है इतना ही नहीं, वो 'वर्डीक्ट' है! इससे बढ़ कर अन्य कुछ कोई कह ही नहीं सकता। इसके अलावा हम कुछ और लिखने की चेष्टा भी करें, तो वह हमारा अज्ञान या मोह ही है।

यहाँ **मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी** का एक प्रसंग यदि हम समझें, तो सहज ही अंतर्दृष्टि होगी!

एक बार वड़ताल में सभी सद्‌गुरुओं के बीच मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी बातें कर रहे थे। वहाँ भेराई गाँव के दरबार जसाभाई आए... वहीं बैठे आचार्य श्री रघुवीरजी महाराज ने उन्हें पहचान लिया। सो, उन्हें बुला कर अपने करीब बिठाया। जैसे चकोर चंद्र से जुड़ जाता है, वैसे ही वहाँ सभा में बैठा सारा सत्संग समाज स्वामिश्री की ओर एक टक देख रहा था। यह देख कर जसाभाई बोले – *मुझे एक बात करनी है।*

रघुवीरजी महाराज ने उन्हें बात करने इज़ाज़त दी।

दरबार जसाभाई खड़े होकर बोले : एक गरीब बहन के घर उसका भाई आया।

बहन को हुआ – *मेरा भाई इतने दिनों के बाद आया है, सो बढ़िया खाना बना कर खिलाऊँ।*

सो, वह बनिये की दुकान पर गई और उससे कहा : *मुझे अच्छे से अच्छा गुड़ दे दो।*

बनिये ने गुड़ दिखाते हुए उससे पूछा – *खांड जैसा गुड़ दूँ?*

तब बाई ने सवाल किया – *क्या खांड गुड़ से बढ़ कर होती है?*

तो, बनिये ने कहा – *वह तो है ही।*

सो, बाई ने खांड ही देने को कहा।

पर, बनिये ने तब फिर पूछा – *क्या शक्कर जैसी खांड दूँ?*

बाई सोच में ही पड़ गई कि *क्या शक्कर खांड से भी बढ़ कर होती होगी?* और... उसने शक्कर ही मांगी।

लेकिन, बनिये ने जब कहा – *देख, 'गिर की दुधारी भैंस' के दूध जैसी शक्कर तुझे दूँगा।*

यह सुन कर उसे हुआ : *जब 'गिर की दुधारी भैंस' मेरे ही घर में है, तो शक्कर क्यों लेनी ?*

यूँ सोच कर बिना शक्कर लिए ही वो घर लौट गई !

इस बोधकथा का रहस्य बताते हुए दरबार जसाभाई बोले –

इस दृष्टांत का मर्म यह है कि मैं जब जूनागढ़ में हमारे इन स्वामिश्री की बातें सुनने जाता, तब मन में ऐसा होता था कि जूनागढ़ तो गुजरात के कोने का आख़िरी मंदिर है, वहाँ ऐसे साधु हैं; तो गढड़ा, मूळी, अमदावाद, वड़ताल जैसे बड़े धामों में तो कैसे साधु होंगे ? ऐसा सोच कर मैं स्वामिजी की आज्ञा लेकर इन सभी धामों की यात्रा करने निकला था। और... सभी साधुओं की बातें सुनीं व... दर्शन करके, मैं यहाँ आया। पर, यहाँ मैं अपनी आँखों से देख रहा हूँ कि वड़ताल में भी इन सभी सद्‌गुरुओं के बीच तो हमारे गुरु गुणातीतस्वामिजी ही बातें कर रहे हैं और सभी साधु-सत्संगी एक वृत्ति से उनकी बातें सुनने में तल्लीन हो गए हैं। यह देख कर मुझे विचार आया कि –

'गिर की दुधारी भैंस' का दूध तो हमारे घर में ही है और मैं तो बेकार में ही सब जगह घूम आया।

दरबार की यह बात सुन कर आचार्य श्री रघुवीरजी महाराज बहुत ही राजी हुए और महाराज ने भी स्वामिजी की महिमा और ऐश्वर्य-प्रताप की बहुत बातें की, जिसे सुन कर वहाँ बैठे सभी को बहुत ही आनंद हुआ। फिर रघुवीरजी महाराज ने स्वामिश्री से कहा :

'मैं पिछले वर्ष जूनागढ़ आया था, तब आपका समागम करने आने का वचन दिया था। सो अब चातुर्मास में जूनागढ़ आना है; पर, कोई विघ्न न आए ऐसी कृपादृष्टि रखना।'

और... यूँ आचार्य महाराज ही नहीं, बल्कि अनादि महामुक्त गोपाळानंदस्वामिजी भी श्रीजी महाराज के वचन से मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी का समागम करने जूनागढ़ जाते थे।

यूँ, जब 'गिर की दुधारी भैंस' का दूध यानि – **मंत्रशक्ति का पूरा विवरण मंत्रसिद्ध-मंत्रस्वरूप प.पू. काकाजी ने ही खूब कृपा करके हमें दिया है, तो अन्य कुछ लिखने-कहने का और ढूँढने का भी रहता ही नहीं।** प.पू. काकाजी द्वारा परोसा यह ज्ञान 'अमृततुल्य' है, जो हर एक को पुनर्जीवन बख़्शेगा - रिजेन्युएट करेगा। सो, प.पू. भरतभाई की इच्छा को पूरी करते हुए प.पू. काकाजी द्वारा अंग्रेजी में लिखित '**मंत्रशक्ति** ' का हिन्दी अनुवाद ही इस पुस्तक द्वारा दिया है, ताकि हिन्दीभाषी जिज्ञासु भी 'स्वामिनारायण महामंत्र' की शक्ति से भलीभांति परिचित हो सकें।

साथ ही – स्वामिनारायण संप्रदाय एवं मंत्र की सर्वोपरिता और गुणातीत विभूतियों के हृदय के मर्म को सहजता से समझ सकें, इस हेतु 'स्वामिनारायण सर्वोपरि क्यों ?', 'योगीगीता', 'मोती बिखरे चौक में' एवं प.पू. काकाजी महाराज के ***रिसर्च की थीसिस*** जैसे लेखों एवं कथावार्ताओं का भी समावेश करके ***अनुभूत – एप्लाईड गुणातीत ज्ञान*** को यहाँ परोसा है...

बेशक, अध्यात्म की चरम सीमा-पराकाष्ठा को प्राप्त **प.पू. काकाजी जैसी विभूति की भाषा का मर्म समझना बहुत कठिन है। पर**, प.पू. काकाजी के हर एक सिद्धांत, चरित्र एवं सनातन सत्य स्वरूप वाणी की गहनता को खूब बारीकी से जिन्होंने न केवल निहारा है, बल्कि प.पू. काकाजी के अद्‌भुत सेवन से जिन्हें मानो 'प्रकृति-पुरुष' से परे के ज्ञान की वो सूझ बख़्शिश में प्राप्त हुई है, ऐसे **प.पू. गुरुजी आज हमें मिले हैं – यह एक बहुत बड़ी तसल्ली है।**

और... देखा जाए तो **इस पुस्तक के संपादन व अनुवाद से लेकर प्रकाशन तक के प्रेरणास्रोत प.पू. गुरुजी हैं।** प.भ. कनुभाई दवे द्वारा किए प्रारंभिक गुजराती अनुवाद के पश्चात् यह हिन्दी पुस्तक मुमुक्षु को किस प्रकार खूब सचोट, प्रेरणादायी व उपयोगी बन सके, उसके पीछे प.पू. गुरुजी का ही कल्पनातीत परिश्रम छिपा है। हम तो केवल निमित्तमात्र ही हैं... उनके सहयोग व अथक् परिश्रम के बिना इस पुस्तक को प्रस्तुत करना नामुमकिन ही था।

बहनों को भगवान भजने का रास्ता खोल देने की जिन्होंने पहल की और उसकी बदौलत एक रूढ़िवादी समाज से खूब अपमान सहा एवं गालियाँ तक खाईं, ऐसे प.पू. काकाजी की यह पूरी सेवा प.पू. गुरुजी ने अक्षरज्योति के आँचल में जो डाली, यही हमारी परमधन्यता है-खुशी है। इस निमित्त पू. बंसरी दीदी एवं प.भ. लक्ष्मी शुक्लाजी ने टाईप सॅटिंग में एवं हम से खूब आत्मीयता से जुड़े सौ. ऊषा पुरीजी, पू. सरस्वतीजी, प.भ. आर.के. अग्रवालजी, प.भ. राकेशभाई शाह एवं प.भ. ओ.पी. अग्रवालजी ने खूब बारीकी से जो प्रूफ चेकिंग किया व प.भ. आशिष ने प.पू. गुरुजी के हृदय के भावों को साकार रूप देते हुए जो मुखपृष्ठ तैयार किया – इन सभी की सेवा कतई भुलाई नहीं जा सकेगी और... ऐसी सेवा के फलस्वरूप प.पू. गुरुजी से उनका संबंध दिव्यभाव से दृढ़ होता जाए – यही प्रार्थना है।

प.पू. काकाजी के अंतर की इच्छा थी कि हम सब जो उनके कहे गए हैं, वे जल्द से जल्द **'गुणातीतभावना वाले साधु'** बनें। इस पुस्तक का एक-एक शब्द जितनी बार पढ़ेंगे, मनन-चिंतन करेंगे, उतनी बार हमारी कक्षा के मुताबिक नए-नए अर्थ

पकड़ पाएंगे – हमें एक नई उमंग मिलेगी। सो, इसमें बताए गए आध्यात्मिक रहस्यों को पकड़ कर, प्रगट संत के साथ अनन्यभाव का संबंध दृढ़ करके हर संजोग में यदि भजन का ही आधार लेंगे, तो खूब सरलता व शीघ्रता से अध्यात्म की हमारी साधना पूर्ण हो जाएगी – एकांतिकी भक्ति का सिंचन हो जाएगा और... हम ***'गुणातीत भावना'*** प्रगटा पाएंगे।

भगवान स्वामिनारायण ने कहा है – ***'मेरी मूर्ति की अपेक्षा मेरा मंत्र महान है।'*** इस तथ्य को मंत्ररटन, मंत्रलेखन और भजन से हर एक श्रेयार्थी साधक आत्मसात् कर सकें ऐसी शुभेच्छा और अपेक्षा के साथ प.पू. गुरुजी के **75वें प्राकट्योत्सव** के आगमन पर **'योगी परिवार अमृत आनंदोत्सव'** के उपलक्ष्य में यह **'मंत्रशक्ति'** प्रस्तुत करते हुए –

प.पू. गुरुजी प्राकट्य दिन
13 मार्च 2009

अक्षरज्योति की सभी बहनों की ओर से
*सेविका **आनंदी** के भावपूर्ण जय स्वामिनारायण!*

इतना तो अचूक कर लेना –

1. सुबह और सायं – दो बार भजन
2. रात को प्रायश्चितरूप प्रार्थना
3. किसी का दोष, किसी की क्रिया, किसी का स्वभाव देखे बिना 'नौकारमंत्र' रट कर साक्षीभाव से सभी क्रियाएं करनी, किन्तु गुण के भाव में स्थित रह कर नहीं करनी।

दिल की सच्चाई और प्रामाणिकता से एक मिनिट भी करी हुई प्रार्थना प्रभु को पहुँचती है और रमणीय पंचविषयों की तीव्र इच्छा, ग़फ़लत और अस्मिता को पिघला ही देती है।

सभी क्रियाएं 'स्वीच ऑन' करके, प.पू. बापा में से जो आए वही करना। तो, ब्राह्मीशक्ति हमारे आगे-पीछे काम करती दिखाई देगी, अनुभव में आएगी और आश्चर्यकारक घटना बनेगी।

– प.पू. काकाजी महाराज

अनुक्रम

क्र.सं.	विषय		पृष्ठ सं.
1.	मंत्रशक्ति	....	13
2.	‘सर्वोपरि स्वामिनारायण’–क्यों?	....	38
3.	योगीगीता	....	57
4.	स्वातिबिंदु	....	61
5.	गुणातीत समाज का मॅग्नाकार्टा	....	63
6.	मंत्र, तंत्र और यंत्र का ऐक्य	....	118
7.	अनोखा अक्षरमत	....	120
8.	अक्षरपुरुषोत्तम के सिद्धांत से भगवान भजना यानि क्या?	....	129
9.	एक और अद्वितीय श्रीजी महाराज और स्वामी	....	134
10.	चार प्रकार के सवार	....	137
11.	पाँच प्रकार के समर्पण	....	140
12.	भावात्मक एकता	....	144
13.	सत्संग में ‘कुसंग’ और मुक्तों की ‘माया’!	....	149
14.	श्री स्वामिनारायण स्तवन	....	153
15.	‘स्वामिनारायण महामंत्र’ महिमास्तवन....	....	158

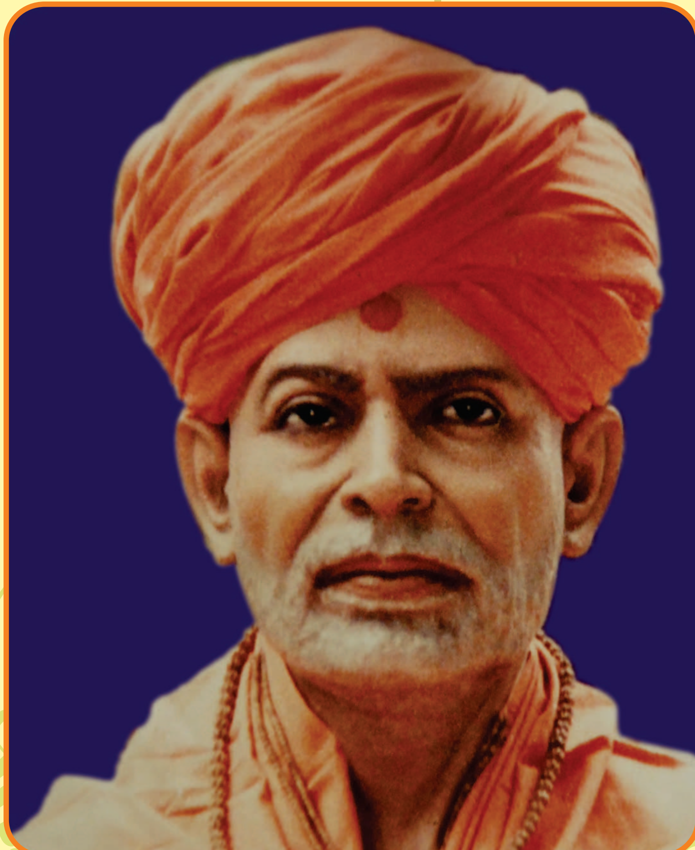

ब्रह्मस्वरूप प.पू.शास्त्रीजी महाराज

ब्रह्मस्वरूप प.पू.योगीजी महाराज

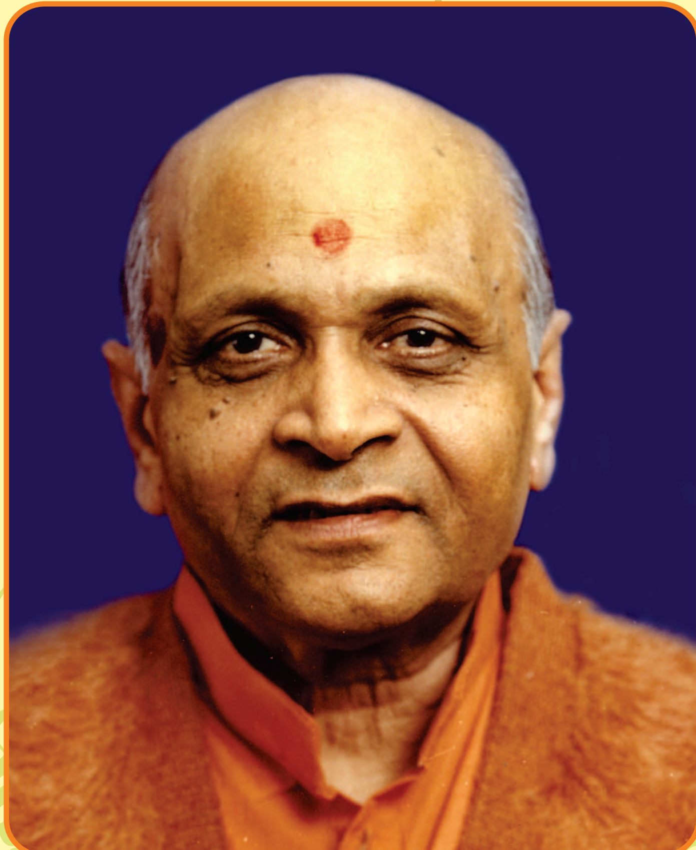

ब्रह्मस्वरूप प.पू.काकाजी महाराज

ब्रह्मस्वरूप प.पू.पप्पाजी महाराज

मंत्रशक्ति

मंत्रमहिमा

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्॥

श्रीमद् भगवद्गीता 9, 16

क्रतु-श्रौत यज्ञ मैं हूँ। यज्ञ-स्मार्त यज्ञ मैं हूँ। स्वधा-आहुति देने का मंत्र मैं हूँ। औषधि मैं हूँ। घी भी मैं ही हूँ। आहुति देने का द्वार अग्नि मैं हूँ और हवनद्रव्य भी मैं ही हूँ।

सुप्ताबीजाश्च ये मंत्रा ना दास्यंति फलं प्रिये।
मंत्राश्चैतन्यासहिताह सर्वसिद्धिकरा स्मृतः॥

कुलार्णवतंत्र 15-16

जिन मंत्रों की शक्ति सुषुप्त है, वे कोई फल देते नहीं; परंतु जो मंत्र जीवंत एवं शक्ति के समेत जागृत हैं, वे सभी सिद्धियाँ दे सकते हैं।

सिद्धमंत्राद्गुरोर्लब्धो मंत्रो यः सिद्धिभाग भवत्।
पूर्वजन्मकृताम्यासान्मंत्रो वा शीघ्रसिद्धिदः॥

कुलार्णवतंत्र 15-14

मंत्रसिद्ध गुरु द्वारा दिया गया मंत्र योग्य फल देता है। फिर भी यदि पूर्वजन्म में मंत्र-जाप किया हो, तो मंत्रसिद्धि जल्दी मिलती है।

यंत्रम् मंत्रामयम् प्रोक्तम् देवता मंत्ररूपिणी

कुलार्णवतंत्र 6-85

यंत्रों में मंत्रों से प्राण पूरे जाते हैं और देवता स्वयं ही मंत्ररूप हैं।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोस्मि स्थावराणां हिमालयः॥

श्रीमद् भगवद्गीता 10, 15

महर्षियों में भृगु ऋषि मैं हूँ। वाणी में एकाक्षर- ॐकार मैं हूँ। यज्ञों में जपयज्ञ मैं हूँ और स्थावर पदार्थों में हिमालय मैं हूँ।

★ ★ ★

❋ भगवान स्वामिनारायण ने **वचनामृत गढडा प्रथम के 56** में 'स्वामिनारायण' महामंत्र की अमाप शक्ति और माहात्म्य समझाते हुए भारपूर्वक बताया है –
चाहे कैसा भी पापी हो, पर अंतकाल में वह यदि जाने-अनजाने 'स्वामिनारायण' नाम का उच्चारण करे, तो सभी पापों से छूट कर ब्रह्ममहोल में निवास करता है।

❋ खुद ही पूछे हुए एक प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान स्वामिनारायण ने **वच. लोया के छठे** में (मन की शांति के लिए) एक उत्तम उपाय बताया है –
भगवान का ध्यान करते हुए मन में कई प्रकार के बुरे संकल्प उठने लगें– जैसे समुद्र में बड़ी-बड़ी लहरें जोर से उठती हैं, यूँ बुरे संकल्प उठने लगें, तब उन्हें टालने के लिए ध्यान को छोड़ कर जिह्वा से उच्च स्वर में निर्लज्ज होकर, ताली बजा कर 'स्वामिनारायण-स्वामिनारायण' भजन करना और 'हे दीनबंधो! हे दयासिंधो!' यूँ भगवान को प्रार्थना करना तथा मुक्तानंदस्वामी जैसे भगवान के बड़े संत हों, उनका नाम लेकर उनको प्रार्थना करनी; तो सभी संकल्प टल जाकर शांति होती है, लेकिन इसके सिवा संकल्प टालने का दूसरा ऐसा उपाय नहीं है।

❋ मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामी ने **प्रकरण 1 की बात 154** और **प्रकरण 5 की 132वीं बात** में कहा है –
स्वामिनारायण नाम के मंत्र जैसा अन्य कोई मंत्र आज बलवान नहीं है। इस मंत्र से रोग टल जाता है, काले नाग का भी ज़हर नहीं चढ़ता और इस मंत्र से पंचविषय उड़ जाते हैं, जीव ब्रह्मरूप होते हैं और काल, कर्म, माया का बंधन छूट जाता है। ऐसा बहुत बलवान यह मंत्र है। सो, निरंतर भजन करना।

★ ★ ★

आश्चर्य हो और न मानी जाए ऐसी बात है, लेकिन विविध नाम और शक्ति के विविध प्रकार के कुल चार करोड़ मंत्र दुनिया में हैं, जिन्हें हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, ख्रिस्ती, जैन और अन्य धर्म के अनुयायी मानते हैं! इन मंत्रों से भक्तों का उत्साह व नैतिक मनोबल बढ़ता है; आंतरिक चेतना या सुषुप्त शक्ति जागृत होती है और.... अपने ईष्ट देवता की आराधना करते हुए उन्हें विविध प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। **'जीवंत मंत्र' समग्र तंत्रविद्या और तंत्रप्रणाली के प्राण स्वरूप हैं।** इसीलिए, उनकी महत्ता ऊँची आँक कर उन पर प्रचुर साहित्य लिखा गया है, इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। मंत्रशक्ति पर पाश्चात्य विद्वानों ने भी खूब लिखा है। इस तमाम साहित्य में–लेखों में, 'मंत्रशक्ति' को प्राथमिक स्थान दिया गया है। इससे ही तंत्रशास्त्र के साहित्य में 'मंत्र' मुख्य है और उसका भारी हिस्सा है।

मंत्र की व्याख्या का प्रयास

तंत्र के कई लेखकों और दार्शनिकों ने मंत्र की व्याख्या करके इसके अर्थघटन के प्रयास किए हैं। इसे पेश करने में खूब भिन्नता भी रही है, लेकिन एक बात पक्की है कि किसी भी लेखक ने मंत्रों को शब्दों की सिर्फ गुनगुनाहट या कवच के रूप में कोई रक्षात्मक उपाय मात्र गिना कर उसकी महत्ता कम आंकी नहीं है। पारिभाषिक अर्थ में 'मंत्र' तंत्रशास्त्र का मुख्य साधन है और इसके वर्णन की अपेक्षा इसके द्वारा होते प्रभावों से यह अधिक प्रमाणित है।

'मंत्र' शब्द प्राचीन वैदिक साहित्य में से मिलते *'मन्'* और *'त्र'* – दो शब्दों से बना है। 'मन्' का अर्थ है – विचारना या मनन करना। जबकि 'त्र' का अर्थ है – मुक्ति या रक्षण देना। **वेदों और वेदांत** के अनुसार मंत्र एक ऐसा गूढ़-आध्यात्मिक पवित्र सूत्र है, जिसे शक्तिपंथी देवता का आवाहन करके पारलौकिक शक्ति प्राप्त करने के लिए अपनाते हैं। महान शब्दकोशकार और संस्कृत के प्रखर विद्वान **मॉनियर विलियम्स** ने 'मंत्र' को विचार, वाणी, पवित्र शब्द, प्रार्थना, स्तुति, वैदिक सूक्त या आहुति सूत्रों के साधन रूप बताया है। **पाली साहित्य** में मंत्र को भौतिक सुख-शांति के रक्षात्मक उपाय के रूप में गिनवाया है।

एक अन्य विद्वान **एच. झीमर** ने मंत्र की व्याख्या करते हुए कहा है कि – *व्यक्ति की अंतरात्मा में छुपे हुए उसके असली स्वरूप को प्रगट करने के लिए मंत्र अनिवार्य है।* **बोझ** एवं **हाल्डर** ने मंत्रों को शाश्वत् शक्ति के खज़ाने के रूप में वर्णित किया है; लेकिन साथ ही साथ उनमें मलिन शक्ति होने का निर्देश भी उन्होंने किया है।

लामा ए. गोविंदा ने मंत्र की व्याख्या करते हुए बताया है–
व्यक्तिगत रूप से गुरु द्वारा शिष्य को मंत्रदीक्षा देने पर शिष्य का व्यक्तित्व खिल उठता है और उसके लिए उच्च अनुभूतियों की अधिक क्षितिज खुल जाती है।

सो ही कहा जाता है कि सबसे पौराणिक मंत्र *'ॐ'* भी यदि विधिवत् और व्यक्तिगत रूप से नहीं दिया जाए, तो उपरोक्त व्याख्यानुसार, 'मंत्र' रूप में गिना नहीं जा सकता। **एस. भट्टाचार्य** की व्याख्यानुसार 'मंत्र' तांत्रिक साधना और वज्रायण के मूल आधार समान है। **के.जी. डीह्ल** ने भी 'मंत्र' में निहित सुषुप्त शक्ति को मान्यता दी है। प्रारंभ के एक पाश्चात्य लेखक **ए. एवलो** ने मंत्र शास्त्र और शक्ति के बारे लिखते हुए 'मंत्र' को ब्रह्म का स्वरूप बताया है।

पूजा, दीक्षा, पाठ, स्तवन, होम, ध्यान, धारणा और समाधि से उपलब्ध 'यौगिक शक्ति' और 'मंत्र शक्ति' समान होने के बावजूद, **जीवंत मंत्र को इस सारे समूह की अपेक्षा खूब ज्यादा शक्तिशाली गिना गया है।** तंत्र साधना में

गुरु, शिष्य को दीक्षा देते हुए, एक विशेष 'मंत्र' देते हैं, जो उसके हृदय में 'बीजरूप' बन जाता है; इसलिए इसे **'बीजमंत्र'** कहा जाता है। मंत्र की ताकत एवं जपयज्ञ के रूप में उसकी क्षमता को–ख्याति को गीता में यहाँ तक वर्णित किया है कि साक्षात् श्रीकृष्ण ने सभी यज्ञों में स्वयं को *'जपयज्ञ'* कह कर, यूँ 'मंत्र' को उनकी एक दिव्य विभूति और उनका दिव्य प्रगटीकरण-दिव्य स्वरूप गिनवाया है। भगवान बुद्ध, श्रीराम, नारदजी, संत तुकारामजी, कबीरजी, नानकदेवजी, रामकृष्ण परमहंसदेव, संत ज्ञानेश्वर, नित्यानंद बाबा, स्वामी रामदास, गुणातीतानंदस्वामिजी, गोपाळानंदस्वामिजी, मुक्तानंदस्वामिजी जैसे अन्य अनेक अवतारों, तत्त्ववेत्ताओं, धर्मप्रणेताओं और संतों ने मंत्र की शक्ति और क्षमता को प्रबल रूप से नवाज़ा है।

उपरोक्त निरूपण से इतना तो सहज कह सकते हैं कि एक निश्चित परिभाषा में 'मंत्र' की व्याख्या करना मुश्किल है। हाँ, मंत्र का बृहद् अर्थ उपरोक्त वर्णन में उपलब्ध है। हक़ीक़त में तो साधक दीक्षा द्वारा गुरुमंत्र लेकर मंत्र शास्त्र की साधना के गूढ़क्षेत्र में जैसे-जैसे प्रवेश करता है, वैसे-वैसे उसे मंत्र का रहस्य, अर्थ और उसकी महत्ता समझ में आती है और जैसे-जैसे उस मंत्र का अभ्यास-जाप करने लगता है, वैसे-वैसे उसे होती अनुभूतियाँ ही मंत्र के अर्थ की गहनता को बढ़ाती हैं। फिर भी, वाचकों के लाभ के लिए मंत्र का अर्थ समझाने की यहाँ कोशिश कर रहे हैं।

मंत्र, तांत्रिक क्रियाएं और दीक्षाविधि की समग्र क्रिया का अणुतत्त्व है। जैसे अणु विकसित और विस्तृत होने पर नया शक्तिशाली रूप धारण करता है, उसी प्रकार मंत्र भी उत्तरोत्तर अधिक शक्तिशाली बन कर भौतिक सुख-समृद्धि के उपरांत पारलौकिक सिद्धि प्रदान करने में सक्षम बनता जाता है। अर्थात् भौतिक सुख-समृद्धि ही नहीं, बल्कि आत्यंतिकी मुक्ति के लिए अनादि ब्रह्म के साथ तादात्म्य पाने का ज्ञान भी उससे प्राप्त होता है।

मंत्र का सतत रटन यानि जप! मनुष्य की नींद उड़ाकर उसके अज्ञानरूपी आवरण को दूर करके, उसे अधिक ऊर्ध्व कक्षा पर ले जाने की जप में क्षमता होती है। श्रीमद् भगवद्गीता में दर्शाया है –

जब अन्य सभी सोए होते हैं, तब योगी जागे हुए होते हैं।

जाग्रतता अथवा अप्रमाद को आध्यात्मिक साधना के मार्ग में भारी पूँजी गिना गया है। जप चेतना को जाग्रत करता है।

'मंत्र' को दिव्यता का निर्देश करने वाला शब्द भाग या नाम मात्र मानना गलत है। किसी भी देवता का मंत्र तो देवता का स्वरूप है। इसलिए मंत्र जाप अत्यंत सावधानीपूर्वक करना अति आवश्यक है। मंत्र के निम्न पांच मुद्दों को खास ध्यान में लेना चाहिएः–

1. *नाद अथवा वर्णबीज*
2. *लय अथवा स्वर*
3. *प्रत्यक्ष सगुण ब्रह्म यानि कि मंत्रशक्ति का जिसमें आविष्कार हुआ हो, ऐसी जीवंत दिव्य विभूति-सर्वोच्च ब्राह्मीस्थिति को पाए हुए संत की हाजिरी*
4. *मंत्र का गूढ़ अर्थ*
5. *मंत्र चेतना के साथ दिव्यभाव की भावना से साधा हुआ ऐक्य।*

मंत्र शक्तिप्रद हो सके, इस हेतु उसका स्पष्टरूप से अर्थ तथा मंत्र द्वारा खुलती चैतन्य भूमिकाओं के लक्षण समझ लेना जरूरी है। मंत्रों को केवल ध्वनि या बाराक्षरी के अक्षर समझने की गलतफहमी नहीं करना। ओउम् का उच्चारण मात्र करते रहने से कोई ठोस परिणाम उपलब्ध नहीं हुए हैं। यह केवल होंठ फड़फड़ाने के सिवा और कुछ नहीं है। **मंत्र का अर्थ और रहस्य समझने पर ही मंत्र पूर्णरूप से असरदायक बनता है।** इस प्रकार समझदारी से किए गए मंत्र के रटन द्वारा मंत्रचैतन्य या साधक की चेतना जाग्रत होकर, मंत्र देवता के धारक प्रत्यक्ष सद्‌गुरु के साथ तादात्म्य साधती है। प्रत्यक्ष सद्‌गुरु ही मंत्रशक्ति को तत्काल फलदायी बनाते हैं। अतः **मंत्रजाप मानवस्वरूप में प्रगट दिव्यविभूति की स्मृति सहित लयबद्ध होना चाहिए और तभी मंत्र के ईष्ट परिणाम मिलते हैं।** मंत्रों के ऐसे रटन से ही वे देवता या शक्ति साधक पर अपनी कृपा बरसा कर, त्रिलोक का दर्शन करवा कर, उसे मंत्रसिद्ध-मंत्रनिष्णात बनाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि **मंत्रसिद्ध सद्‌गुरु द्वारा मंत्रदीक्षा लेकर उनके मार्गदर्शन में यथार्थ रूप से यदि जाप किया जाए, तो सात ही दिन में सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।** कहा जाता है कि–

'गुरु' दीक्षा का मूल या जननी है।
'दीक्षा' मंत्र का मूल है।
'मंत्र' देवता का मूल है।
'देवता' सिद्धों का मूल है।
'अक्षरब्रह्म' सभी सिद्धों की जननी है।

परब्रह्म अक्षरब्रह्म में निवास करते रहने के बावजूद, वे उससे पर हैं और सभी कारणों के कारण हैं।

किसी भी साधक की सिद्धि की कक्षा का आधार उसके गुरु द्वारा प्राप्त की हुई सिद्धि पर रहता है। सो ही, **साधना की दीक्षा और मंत्र सामान्य शिक्षकों, मास्टरों, आचार्यों और गुरुओं से लेने के बजाय, सर्वोच्च व सच्चे सद्‌गुरु के पास से ही लेने चाहिएँ।** इस विषय की विस्तृत जानकारी पाने के लिए ***'ध रीयल इसेन्स ऑफ तंत्र'*** पुस्तक का ***'गुरु-शिष्य रिलेशनशिप'*** प्रकरण पढ़ें।

मंत्रशास्त्र जटिल और मुश्किल विषय है। उसे समझने के लिए उसकी भरपूर जानकारी ही नहीं, बल्कि सतत अभ्यास और स्वानुभव पर आधारित निपुणता की खूब जरूरत है। विश्वभर के पौराणिक ग्रन्थों और संशोधनों ने अनादिकाल से अनेक शब्दों और उच्चारणों तथा उनके बीच के कई प्रकार के अति सूक्ष्म भेदों पर प्रकाश डाला है। कई विवेचक मंत्रशास्त्र को विशेष महत्त्व नहीं देते। कई भारतीय तांत्रिक, मंत्र की गणना सिर्फ शक्तिशाली सम्मोहन शक्ति और मन की उत्तेजना को बुझाने वाली पद्धति के रूप में करते हैं। ऐसे मतों से आध्यात्मिक उत्थान व प्रगति कराने और आत्यंतिकी मुक्ति अर्पण करने की मंत्र की अमोघ शक्ति की उपेक्षा हुई है।

विद्वानों के ऐसे परस्पर विरोधी मंतव्यों के बावजूद, तांत्रिक साहित्य के आधे से अधिक हिस्से का योगदान मंत्रशास्त्र के लिए है। कमनसीबी यह है कि टीकाकारों ने इस विषय की गहराई में उतर कर मंत्रों का गूढ़ अर्थ और औचित्य के बारे में संशोधन करने की परवाह नहीं की है। मंत्र की बौद्धिक जानकारी या उसके ग्रंथों के पन्ने पलट लेने से कोई भी व्यक्ति उसके सच्चे मूल्य और औचित्य को समझ नहीं पाएगा। एक सच्चे साधक की भाँति मंत्र की लाक्षणिकता के सभी पहलुओं का अभ्यास करके उसके असर का स्वानुभव करने के बाद ही उस विषय में कहने या समझाने के लायक कोई बन सकता है। **सामान्य गुरु और सच्चे सद्गुरु के बीच यही फर्क है। सच्चे सद्गुरु ने ग्रंथपठन मात्र से मंत्र का ज्ञान प्राप्त नहीं किया होता, बल्कि निजी आंतरिक अनुभूति से प्राप्त उसकी सच्ची महत्ता के वो संपूर्ण जानकार हुए होते हैं।**

मंत्र की खोज कोई आकस्मिक नहीं हुई है। अनादि ब्रह्म और इनके कई व्यक्त स्वरूपों की कृपा या साधु-संतों और ऋषि-मुनियों की सतत तपस्या के फलस्वरूप ये मंत्र मिले हैं। इसी वजह से ही मंत्रों को उनकी अतुल शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त हुई है। जैसे किसी भी भौतिक पदार्थ को किसी प्रबल ऊर्जा से चार्ज किया जाता है, ऐसा ही कुछ मंत्र में होता है। मंत्र की रचना भले ही कुछ शब्दों या ध्वनि से हुई हो, परंतु **शाश्वत् स्वरूप द्वारा मिली ऊर्जा और साधक की अनुभूति उसमें सम्मिलित होने से सिर्फ शाब्दिक असर की अपेक्षा उसका प्रभाव और सामर्थ्य कई गुणा बढ़ जाता है।**

मंत्रों का उद्‌भव और रचना

अब हम मंत्रों की सामान्य रचना को देखें। हर एक मंत्र के तीन भाग बनते हैं।

1. मंत्र का प्रथम भाग **प्रणव** है जो कि **ओम्‌कार** के रूप में प्रसिद्ध है। हर एक व्यक्ति कई विविध मंत्रों से परिचित है। ध्यान से देखने पर पता लगेगा कि इन

सभी मंत्रों की शुरुआत ॐ से होती है। यह ॐ या प्रणव सर्वशक्तिमान प्रभु के सामर्थ्य का द्योतक है। **योगसूत्र** में कहा है– *'तस्य वाचकः प्रणवः'।* अर्थात् ॐ– प्रणवनाद ईश्वर का प्रतीक है। ॐ परम पवित्र शब्द के रूप में ईश्वर स्वरूप में ही पूजा जाता है। समग्र *छांदोग्य उपनिषद्* में इसी ॐकार की विस्तृत जानकारी और अभ्यास समाया है। **प्रणव** के बिना मंत्र मस्तक के बिना शरीर जैसा है। वास्तव में तो पुराणों में और वेदोक्त मंत्रों में भी **प्रणव** बिना के मंत्र को असरकारी नहीं गिना जाता है।

2. मंत्र के दूसरे भाग को **बीज** अथवा **मंत्र के शरीर** के रूप में पहचाना जाता है। जिस देवता का वह मंत्र है, उसका वह प्रतीक है। कई बार तो इस भाग का ही मंत्र के रूप में प्रयोग होता है। जिस देवता का वह मंत्र है, उसका प्रभाव और शक्ति इस भाग में होना माना जाता है।
3. मंत्र का तीसरा भाग **पल्लव** या **पर्ण** के रूप में पहचाना जाता है। प्रत्येक मंत्र *'नमः'* या *'स्वाहा'* शब्द से पूर्ण होता है। ये शब्द मंत्र की विशिष्टता या उसके जाप का प्रयोजन दर्शाते हैं।

मंत्र के उद्देश्य

मंत्र साहित्य का अभ्यास करते हुए दिखाई पड़ता है कि मंत्र का उपयोग कई हेतु से किया जाता है। परंतु मुख्य रूप से उसके निम्न विभाग कर सकते हैं।

1. ***रक्षात्मक और कवचरूप में*** : मानव उत्क्रांति के प्रारंभिक काल में-प्राचीन युग में प्रकृति के विविध रूप और उनकी शक्ति से अनजान होने के कारण मानव के मन में अनेक प्रकार के भय उत्पन्न होते रहते थे और प्रकृति के इन भावों को वह रहस्य, आश्चर्य एवं भय से देखा करता था। वह यह भी मानता था कि कुछ मंत्रों के उच्चारण से वह इन ताकतों के हानिकारक प्रभावों को दूर कर ईष्ट फल को प्राप्त कर सकेगा। यद्यपि मंत्र के उपयोग के लिए यह खूब ही प्राथमिक अभिगम है, लेकिन इसे झूठा ठहरा कर इसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। **आज भी अनिष्ट तत्वों के मलिन असरों से बचने के एक संरक्षणात्मक उपाय के रूप में मंत्रों का उपयोग होता है।**
2. ***प्राप्ति*** : जैसे कि ऊपर बताया–मंत्रों का उपयोग अनिष्ट प्रभावों को दूर रखने और ईष्ट इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए होता रहा। मंत्र का अधिकतर उपयोग तो अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए होता रहा है। क्या पाने के लिए व्यक्ति मंत्र का आधार लेता है, यह उसके स्वभाव, उसकी कक्षा और उस समय के संयोगों पर आधारित है। कई लोग सामान्य भौतिक चीजों-वस्तुओं की प्राप्ति के

लिए भी मंत्रजाप करते हैं। दूसरे कई ऐसे हैं कि जो अधिक उच्च प्राप्ति के लिए मंत्र का आधार लेते हैं। लेकिन इससे भी अधिक कई व्यक्ति तो इन सभी से ऊपर उठ कर किसी भी प्रकार की प्राप्ति के विचार मात्र से मुक्त रहते हैं। **हाँलाकि ऐसी भावना एकांतिक भक्तों की होती है, जो कि भगवान के संबंध एवं कृपा के सिवा और कुछ भी नहीं चाहते। ऐसा नहीं कि किसी प्राप्ति के लिए मंत्रजाप करना गलत है। मंत्रस्वरूप दिव्य विभूति का तो स्वभाव है कि भक्त जो इच्छा करे वह पूरी करना और धीरे-धीरे उसे निम्न स्तर से सर्वोच्च कक्षा पर ले जाना।**

3. ***तादात्म्य*** : 'प्राप्ति' के बारे में की गई उपरोक्त चर्चा में हमने देखा कि एकांतिक भक्त को तो भगवत् कृपा और भगवत्संबंध के सिवा अन्य कुछ नहीं चाहिए। कई व्यक्ति मंत्र देवता के साथ तादात्म्य साधने के लिए मंत्र का आधार लेते हैं। सो, वे जब उस मंत्र द्वारा शाश्वत् स्वरूप का मनन करते हैं, तो **उनका उद्देश्य अपनी अपूर्णता – क्षतियों को दूर करके उस मंत्र के देवता के साथ तादात्म्य स्थापित करके प्रगट सत्पुरुष जैसी पूर्णता प्राप्त करने का होता है।** महान आत्माओं का यह उद्देश्य होता है और विरले ही इसके लिए कटिबद्ध होते हैं।

सामान्य रूप से जगत में लोग मंत्रजाप इसलिए करते हैं कि मंत्र उपरोक्त बताए दो उद्देश्यों को सिद्ध करने की क्षमता रखते हैं। पश्चिमी मानसशास्त्र और मनोवैज्ञानिक पृथक्करण के विस्तृत ज्ञान के कारण, कई लोग मंत्र में श्रद्धा न रखते हुए और उसको स्वीकार न करते हुए भी उसका उपयोग तो करते हैं, क्योंकि कई मंत्र शमन और सम्मोहन की ताकत लिए हुए होते हैं। महर्षि महेश योगी के प्रचलित भावात्मक ध्यान की (Transcendental Meditation) पद्धति इस प्रकार की है। फिर भी, यह गलत या खोटा है ऐसा समझना नहीं, लेकिन यह समझ कर रखना चाहिए कि मंत्र इससे अधिक भी बहुत कुछ कर सकते हैं। संक्षिप्त में **मंत्र अनादि ब्रह्म का स्वरूप है और मंत्रजाप तो ब्राह्मीस्थिति को प्राप्त करने की अंतिम साधना है।** इस कारण ही वेदों के प्रारंभिक भाग की गणना पवित्र मंत्रों के रूप में होती है और उसके जाप और उच्चारण के बारे में खूब सावधानी बरती गई है। मंत्र – उसी प्रभु का प्राण है और मंत्र – उसी प्रभु का स्वरूप है।

यंत्र

यंत्र का शाब्दिक अर्थ है 'मशीन'। तंत्र शास्त्र में इसे मंत्र का मूर्तिमान भौतिक स्वरूप गिना जाता है। मंत्र को उसके देवता का प्रतीक अथवा शब्द स्वरूप गिना जाता है।

जैसे कि आगे बताया है, मंत्रों का कार्य मंत्रोच्चार के नाद द्वारा उस देवता का आवाहन करना है। साथोसाथ उपासक को मंत्र का अर्थ और उसकी विशिष्टता से संपूर्णतया जाग्रत रह कर, उस मंत्र के देवता का ध्यान करना आवश्यक है, जबकि यह प्रक्रिया बिल्कुल मानसिक है। हाँ, प्रारंभिक साधक के लिए यह प्रक्रिया थोड़ी कठिन है, क्योंकि यह भावात्मक और मानसिक है। सो, साधक का ध्यान केन्द्रित हो सके इसलिए मंत्र का ही कोई भौतिक स्वरूप या चिह्न उसके सामने होना जरूरी है। यूँ भी कई कार्य करने के लिए मानव अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा आँख का ही सबसे ज्यादा उपयोग करता है। कान से सुनी हुई बात दिमाग़ में आ तो जाती है, लेकिन सुनी और देखी हुई बात और ठीक से इसी कारण बैठ जाती है। यदि वस्तु नज़र के सामने हो, तो दिमाग़ उस पर ज्यादा अच्छी तरह ध्यान केन्द्रित कर सकता है। अतः सभी तंत्रों में मंत्र मानसिक रूप से और यंत्र भौतिक रूप से साधना में एक-दूसरे के पूरक बन कर रहते हैं।

तंत्रविद्या में उपयोगी यंत्र विविध प्रकार के और विविध पदार्थ के बने होते हैं। अलग-अलग भौमितिक आकारों और अलग-अलग चिह्न वाली विविध जटिल आकृतियों वाले यंत्रों से हम में से कई परिचित होंगे। पत्थर, तांबा और अन्य धातुओं से ये यंत्र बने होते हैं। हर एक यंत्र निजी कोई खास विशेषता लिए हुए होता है।

मंत्र के अर्थ और उसकी विशिष्टता पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए एक ठोस भौतिक स्वरूप वाला यंत्र साधक को सहायरूप होता है। ऐसा माना जाता है कि साधक जब यंत्र के माध्यम से मंत्र पर निजी ध्यान केन्द्रित करता है, तब वह यंत्र ही देवता की मूर्ति बन कर उसके मन में फैल जाता है। धीरे-धीरे उसका व्यक्तित्व, प्रकृति की स्वाभाविक जड़ता में से बदलाव पाकर, अपनी अहंवृत्ति से मुक्त होता है। उस समय उपयुक्त यंत्र, मंत्र का एक प्रतीक, प्रतिमा या मूर्तिरूप बना रहता है। साधक जब मंत्र की इस प्रकार की आराधना में रत होता है, तब वह उस मंत्र के देवता की सारी विशिष्टताएं, सामर्थ्य और प्रभाव का इस यंत्र में आवाहन करता है। संक्षिप्त में यंत्र जो कि बाह्यरूप से तो मात्र एक जड़ पदार्थ ही है, वह उस देवता का एक जीवंत और चेतनवंत प्रतीक बन जाता है और उसमें प्राणशक्ति का संचार होता है। **लोग अहोभाव से देवी-देवताओं की मूर्ति में जो आस्था रख कर उन्हें पूजते हैं**, वह इस प्राणशक्ति के कारण है। **पत्थर या धातु के टुकड़े या आकार मात्र न बने रह कर वे सर्वोच्च शक्ति का साक्षात् प्रतीक बन जाते हैं।** ईसाईयों में भी क्रॉस को ईसामसीह के मानवजाति के प्रति के प्रेम और बलिदान का प्रतीक माना जाता है। सो,

यह बात जरूर समझ कर रखना कि **मंत्रोच्चार द्वारा यंत्र में दिव्य शक्ति का संचार होता है और इससे वह उस मंत्र का एक जीवंत और चैतन्यस्वरूप प्रतीक बन जाता है।**

यूँ तो यंत्र कई हैं, परंतु प्रतीकात्मक रूप से स्थापित त्रिकोणों से बना *'श्रीयंत्र'* इनमें सबसे ज्यादा प्रचलित यंत्र है। इस यंत्र के केन्द्रस्थान पर एक बिन्दु होता है, जहाँ से देवता जाग्रत होता है। इस देवता का तेज अनंत सूर्य के तेज सरीखा होता है और साथ ही उसकी शीतलता अनंत चंद्रमा की शीतलता के समान होती है। ऐसे सभी आकृतिबद्ध यंत्रों के केन्द्र शक्ति के मूल स्रोत का वह सूचक है। लिहाज़ा मानव शरीर की गिनती एक सर्वोत्कृष्ट यंत्र के रूप में कर सकते हैं। इसकी रचना खूब ही अटपटी और जटिल होने के बावजूद इसका आकार खूब ही सप्रमाण है। केन्द्र में अर्थात् हृदय में शाश्वत् शक्ति का निवास है। सो, सर्वश्रेष्ठ यंत्र के रूप में मानव शरीर पर ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं। इस प्रकार हृदय में विराजमान परमात्मा का ध्यान हो सकता है और उसके द्वारा शरीर के रोम-रोम को चेतन कर सकते हैं। साधक के ध्यान से यदि एक पत्थर या धातु के यंत्र में प्राणशक्ति का संचार होकर उस मंत्र के देवता का सामर्थ्य आ सकता है, तो मानव शरीररूपी यंत्र की इस तरह की क्षमता का तो कहना ही क्या ? सच में तो, **कोई भी साधना-चाहे वो हठयोगी की हो या राजयोगी की हो या कुंडलिनी शक्ति के उपासक की हो-उन सभी का उपयोग उस ऊर्ध्व भूमिका पर जाने के लिए कर सकते हैं, यदि हृदयस्थ शक्ति को जाग्रत करा हो!** *'स्वरूपयोग'* अथवा *'अक्षरपुरुषोत्तमयोग'* में यही निर्दिष्ट है। योग के एकीकरण में भी हमने यही बात कही है।

विविध आकृतियों, पत्थर या धातुओं के प्रतीकों की अपेक्षा यदि कोई अत्यंत सक्षम एवं सचेतन यंत्र है, तो वह मानव शरीर ही है। इसलिए सच्चा **'भगवदी'** (मानव देहधारी आदर्श भक्त) एक ऐसे श्रेष्ठ यंत्र की पूर्ति करता है, जो कि साधक के लिए सद्गुरु के साथ तादात्म्य-दिव्य एकता दृढ़ करने में श्रेष्ठ निमित्त बनकर रहता है। इससे अजपाजप या मंत्रयोग की फलश्रुति मिलती है। भगवदी के माध्यम से होती साधना का श्रेष्ठ पहलू यह है कि उसे कोई भी अपना सकता है और अन्य लंबी एवं कठिन तांत्रिक पद्धतियाँ कि जिनमें अलग-अलग मंत्र और यंत्रों का उपयोग किया जाता है, वैसी जटिल नहीं हैं। सच्चा साधक देवता या गुरु का ध्यान करते हुए धीरे-धीरे ऐसी कक्षा पर पहुंचता है, जहाँ वह खुद ही ऐसा यंत्र या तो प्रभु का उपकरण बन जाता है। उसके बाद, बाकी का कार्य प्रभु करते रहते हैं। गीता में

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को यही बात कहते हैं–*'निमित्तमात्र भव सव्यसाचिन्'।* अर्थात्–हमें तो उस परम दिव्य तत्त्व का साधन ही बनना है। बाकी का कार्य वे ही पूर्ण करेंगे।

मंत्र के प्रकार

मंत्र के अलग-अलग कई प्रकार हैं। उसमें मुख्य रूप से निम्नलिखित हैं :

1. वेदोक्त मंत्र

2. पौराणिक मंत्र

3. आगम मंत्र

4. सावर मंत्र

5. जीवंत साकार मंत्र अथवा दिव्य विग्रह मंत्र

1. *वेदोक्त मंत्र*–वेदों में से हमें जिन मंत्रों की जानकारी मिलती है, वे ऋषि-मुनियों या संतों के जाने हुए या अनुभव किए हुए हैं। वैदिक मंत्रों में शाश्वत् सत्य समाया हुआ है, जिसका अस्तित्व अनादि काल से है। सो, कठोर तपस्या या देहदमन द्वारा सनातन सत्य की प्राप्ति के पात्र बने हों, ऐसे ऋषि-मुनि या संत ही उन मंत्रों को पा सकते हैं या अनुभव कर सकते हैं। अतः वे उन मंत्रों के*रचयिता* नहीं, अपितु उनके *दृष्टा* कहे जाते हैं। मौखिक उपदेश के माध्यम से ये मंत्र पीढ़ी दर पीढ़ी सजीव रहे हैं। ऋषि-मुनियों द्वारा सुनी आर्षवाणी या श्रुति के रूप में भी ये वेदोक्त मंत्र पहचाने जाते हैं। समग्र विश्व की संभाल और मानवजाति के उत्कर्ष के लिए जरूरी सभी सिद्धांत और सत्य इन मंत्रों में समाए हुए हैं।

2. *पौराणिक मंत्र*– कालांतर में ये वेदोक्त मंत्र भूले गए और इन्हें यथार्थ रूप से समझने में भी मुश्किल पड़ने लगी। बहुत ही थोड़े लोग, जो कि सतत अभ्यास करने की क्षमता रखते थे, वे ही इन मंत्रों को समझ सकते और उसका उपयोग कर सकते थे। सो, मानवजाति के प्रति की करुणा के कारण **महर्षि वेदव्यास** ने इन वैदिक मंत्रों की सरल भाषा में रचना करके इन्हें अठारह पुराणों में समाविष्ट कर लिया। वेदों में निर्दिष्ट आध्यात्मिक सत्य को सामान्य व्यक्ति सरलता से समझ सके, यह इन पुराणों की रचना का हेतु था। यूँ सामान्य व्यक्ति भी समझ सके, ऐसी सरल और सीधी-सादी भाषा में पुराणों ने वेदों का ज्ञान दिया।

3. *आगम मंत्र*–वेदोक्त मंत्र और पौराणिक मंत्र लोगों पर विशिष्ट प्रकार की पात्रता, शिस्त, विधि और सिद्धांत लादते हैं। इन सभी का पालन करना भी लोगों

को मुश्किल पड़ा। समय के गुजरते लोग भी ज्यादा भौतिकवादी बनने लगे, सो उन्हें इन मंत्रों का अर्थ और महत्त्व नहीं रहा। लोग उग्र तपस्या और कड़े नियमों के पालन की क्षमता खोते गए। ऐसे संजोगों में लोगों की इस अक्षमता को ध्यान में रख कर, आध्यात्मिक गुरुओं ने इन मंत्रों को ज्यादा सरल बनाने का प्रयत्न किया, जिससे कि उनका उपयोग और आसानी से हो सके। यूँ काल्पनिक देव को मानकर, अर्थ या माहात्म्य समझे बिना, केवल यांत्रिकरूप से ही मंत्र जाप करने की अपेक्षा मानवस्वरूप में परमात्मा के दिव्य स्वरूप की-परम आद्य शक्ति की ब्रह्मस्वरूप संत के माध्यम से आराधना का संकेत देती प्रगट की उपासना के ज्यादा असरकारक 'आगम मंत्र' हमें प्राप्त हुए।

4. ***सावर मंत्र*** – कई सिद्धों ने स्वप्रयत्न और अपने पसंदीदे ईष्ट देवी-देवता की आराधना से एक उच्च कक्षा पर पहुँच कर, ऐसी सिद्धि प्राप्त की होती है कि उनके केवल एक शब्द या सूत्र के उच्चारण मात्र से हमारी इच्छा या कार्य फलीभूत होते हैं। सत्पुरुष के ऐसे शब्द या सूत्र को *'सावर मंत्र'* कहा जाता है। ऐसे मंत्रों का उपयोग मंत्रसिद्ध गुरु के आशीर्वाद और मार्गदर्शन मिलने के पश्चात् ही करना चाहिए।

5. ***जीवंत मंत्र*** –हमें यहीं और जीतेजी ही अपार शक्ति, सिद्धदशा और सनातन सत्य का निश्चयात्मक और सचोट रूप से साक्षात्कार कराने की क्षमता में किसी भी मंत्र की कसौटी निहित है। सो, 'मंत्रसिद्धि' ही तंत्रशास्त्र में अत्यंत महत्त्व का सीमा चिह्न है और इसलिए जो मंत्र जीतेजी आत्मसाक्षात्कार और पूर्णता प्राप्त करा सके, उसे 'जीवंत मंत्र' कहते हैं।

आज के जमाने में जब एक छोटा बालक भी उसे तसल्ली हुए बिना किसी भी बात का विश्वास नहीं करता, तो स्वाभाविक है कि जिसे पारलौकिक शक्ति, सिद्धि, मुक्ति और आत्मसाक्षात्कार करना हो, ऐसा व्यक्ति उसे बताई गई किसी भी बात को अंध-विश्वास से मान ही नहीं सकता। वह किसी भी बात या किसी भी मंत्र की सच्चाई और उसके सामर्थ्य को परख सके इतना समझदार व होशियार तो होता ही है। जो मंत्र केवल संभावित रूप से शक्तिशाली हों, इतना ही नहीं, बल्कि वास्तव में **मुक्ति, आनंद और आत्मसाक्षात्कार करवाते हों, ऐसे मंत्र को ही अपना कर लोग श्रद्धा से अनुसरण करते हैं। ऐसे मंत्र ही 'जीवंत मंत्र' या 'सर्जनात्मक शक्तिशाली मंत्र' कहे जाते हैं।**

हमारे पूर्वजों एवं बड़ों ने और खास तौर पर वैदिक काल के ऋषि-मुनियों ने अथक् परिश्रम करके, हम अपने छोटे से छोटे दैनिक क्रियायोग भी सफल रूप से कर सकें,इस हेतु उनके अनुरूप असंख्य मंत्र ढूंढ निकाले हैं। ऐतिहासिक तथ्यों ने दर्शाया है कि हमारे जीवन के लगभग हर एक अर्थपूर्ण प्रसंग के लिए 'मंत्र' अस्तित्व में थे। प्राचीन मंत्रग्रन्थों की सहायता से –'मंत्रों का महासागर' (Ocean of Mantras) ग्रंथ का संकलन करने में, इलाहाबाद के मंत्रशास्त्री पंडित **माधवराय वैद्य** ने अपना दिल निचोड़ दिया है। हाँलाकि, हमारी भूमि के इस अमूल्य सांस्कृतिक वारसे को जीवंत रखकर वैष्णवों, शैवों और शाक्तों के दिल को उत्साही करने के लिए उनका यह प्रयत्न सच में खूब ही प्रशंसनीय था। फिर भी, उन सभी मंत्रों का साक्षात्कार कर सकें ऐसे मंत्रसिद्ध पुरुष का न होना–यह एक बड़ा दुर्भाग्य था। **'मंत्रों का महासागर'** में हर एक मंत्र का विवरण इतना विस्तारपूर्वक व सुचारु रूप से दिया गया है कि मंत्र के अभी तक के सभी ग्रंथों में सर्वश्रेष्ठ संकलन के रूप में इस ग्रंथ की गणना होती है। परंतु सच्चे मंत्रसिद्ध पुरुष के अस्तित्व के बिना यह अति अमूल्य संग्रह निश्चेत और यांत्रिक एवं केवल शैक्षणिक हेतु जितना ही मर्यादित बन गया है।

हमारे इस विधान से ऐसी गलतफ़हमी न की जाए कि मंत्रों की शक्ति को नकारने का या कम आंकने का हम प्रयास कर रहे हैं। बल्कि, हम तो मंत्रों की विशेषता पर सभी का ध्यान भारपूर्वक खींचना चाहते हैं जो कि वाकई शक्तिशाली व प्रभावशाली हैं।

इस संदर्भ में बंगाल के प्रख्यात संत **श्री रामकृष्ण परमहंस** का एक प्रसंग यहाँ प्रस्तुत करने योग्य है। एक बार परमहंसदेव और उनके शिष्य भावपूर्वक प्रभु का नामरटन कर रहे थे। तब मंत्र के प्रभाव से अनजान एक नए व्यक्ति को यह एक समय बर्बाद करने की व उबा देने वाली, यांत्रिक, अर्थहीन और नीरस प्रक्रिया लगी। उसने चीख कर रोष में खड़े होकर, यह बकवास बंद करने के लिए परमहंसदेव को कहा और इस नामरटन को करने के पीछे का उद्देश्य और उसकी जरूरत बताने को भी कहा। परमहंसदेव ने उसे यकायक *'मूर्ख'*–यूँ कह कर बैठ जाने की आज्ञा की। ऐसे संबोधन से वह बिदक गया और परमहंसदेव को अपशब्द बोलने लगा। परमहंसदेव ने तुरंत ही उसकी बात का मुद्दा पकड़ लिया और उससे कहा –

मात्र 'मूर्ख' शब्द से यदि तेरे मन पर इतना अधिक असर होता है, तो फिर भगवान के नाम का – इस पवित्र मंत्र का तो कैसा असर होगा ? और वह भी यदि भक्तिभावपूर्वक सतत नामरटन के रूप में लिया जाए !

परमहंसदेव की बात के हार्द (रहस्य) को वह समझ गया। ऐसी सचोट चेष्टा से अधिक कुछ समझाना रहता ही नहीं।

मंत्रों के इन चारों प्रकारों में से मानव स्वरूप में प्रगटे हुए दिव्य अवतारों के 'जीवंत मंत्र' कलियुग में सबसे ज्यादा प्रभावशाली हैं। *सत्यनारायण* मंत्र इतना असरकार नहीं हो सकता, क्योंकि *सत्यनारायणदेव* द्वारा मानव अवतार न लिए जाने के कारण, वह मंत्र उनके साथ सीधा संबंध स्थापित नहीं कर पाता। **जिसका अस्तित्व ही ना हो, उसके साथ तादात्म्य नहीं हो सकता।** श्रीराम, श्रीकृष्ण, भगवान महावीर, भगवान बुद्ध, ईशु और अन्य **दिव्य सत्पुरुषों, ब्रह्मस्वरूप संतों और अवतारों के मंत्र 'जीवंत मंत्र' हैं। उन्होंने हमारे जैसा ही पंचभूत का देह धारण किया है और फिर भी वे भौतिक इक्यावन तत्त्वों से परे हैं। उनके मंत्र का रटन करते ही हमें उनका कुछ अद्‌भुत दिव्य अनुभव हो सकता है। इन दिव्य स्वरूपों के द्वारा पंचभूत का मानव शरीर धारण करने के कारण, कोई जब उनका नामरटन करे और उनका ध्यान करे, तब उस ध्वनि और विचार के आंदोलन अर्चिमार्ग से उनको पहुंचते हैं। इसीलिए ही मंत्र 'जीवंत' बन कर प्रभावशाली और शक्तिदायी बनता है।**

ऐसे जीवंत मंत्रों को हम मुख्य रूप से दो प्रकार में बांट सकते हैं। प्रथम प्रकार – ऊपर बताए मुताबिक, जीवंत मंत्र के प्रभाव के साथ संबंध रखता है; जिसका आधार मंत्रसिद्ध संतों, महात्माओं या अवतारों की मानवस्वरूप में मौजूदगी है।

कई धर्मों में आध्यात्मिक विरासत शुद्ध गुरु परंपरा के रूप में अखंड संभली नहीं है। फलस्वरूप प्रकृति के संपूर्ण परिवर्तन की साधना एवं पूर्णता प्राप्त करने के लिए साधकों को मार्गदर्शन प्राप्त नहीं हो सका।

सो, दूसरा प्रकार ऐसे जीवंत मंत्र को निर्देश करता है जिसकी आध्यात्मिक विरासत धरती पर शुद्ध गुरु परंपरा के रूप में अखंडित संभली हुई है। यहाँ ऐसे प्रत्यक्ष मंत्रसिद्ध ब्रह्मस्वरूप संत का सान्निध्य एक या दूसरे स्वरूप में अचूक अखंड रहता है, जो साधक का मार्गदर्शन करके उसकी जड़ प्रकृति का संपूर्ण रूपांतर करके, उसे अपने जैसा ही समर्थ बनाता है। इसीलिए ऐसे मंत्र '**दिव्य विग्रह मंत्र**' के रूप में पहचाने जाते हैं।

'जीवंत मंत्र' और 'दिव्य विग्रह मंत्र' के बीच मुख्य फर्क यह है कि जीवंत मंत्र को भले कितना ही सुचारु रूप से जपें, तो भी उसकी क्षमता मर्यादित है। इससे साधक की जड़ प्रकृति और अहं ग्रंथि संपूर्ण रूप से पिघल नहीं सकती; न ही काल, कर्म और

माया से परे करके व उसके बंधनों से मुक्त करने की यहाँ खातिरी है, और न ही यह मंत्र आत्यंतिकी मुक्ति दे सकता है। इसमें ज्योत से ज्योत प्रगटा कर या पारस से पारस बनाकर आध्यात्मिक विरासत को सदा अखंडित रखने की क्षमता नहीं होती। इस मंत्र से शिष्यों की मनोकामनाएं शायद पूर्ण हो जाएं, लेकिन वह उन्हें भय, कामना, सुरक्षा या अहंता जैसी वृत्तियों के आकर्षणों या जड़ प्रकृति के बंधनों से मुक्त नहीं कर सकता।

यह एक ऐसी दुर्लभ और अपवादरूप सर्जनात्मक क्रियाशील विशिष्टता है जो कि केवल 'दिव्य विग्रह मंत्र' में ही है। समर्थ सद्‌गुरु के मार्गदर्शन में ऐसे 'दिव्यविग्रह जीवंत' मंत्र के रटन से की जाती 'स्वरूप अष्टांग' की प्रक्रिया सबसे अधिक शक्तिशाली और श्रेष्ठ साबित हुई है। फिर, यह अत्यन्त सरल भी है; क्योंकि प्रत्यक्ष ब्रह्मस्वरूप संत के सीधे मार्गदर्शन और सेरेछाया में उसकी साधना होती है। **साधक, साधना यात्रा के अंतिम चरण तक पहुंच कर, जीतेजी पूर्णता को प्राप्त करे तब तक संत उस साधक के माँ-बाप, साथी, मित्र, मार्गदर्शक या तत्त्वज्ञानी गुरुरूप में हमेशा उसके साथ ही रहते हैं।** साधक इस मंत्र को सिद्ध करके खुद भी खूब ही समर्थ 'मंत्रसिद्ध' बन सकता है और अन्य को भी मार्गदर्शन देकर उसे मामूली मंत्रशास्त्री से मंत्रसिद्ध बनाने में सहायक हो सकता है।

कलियुग में केवल ऐसा मंत्र ही जीवन के सारे द्वंद्वों, क्लेशों, विपरीत परिस्थितियों और विसंवादिताओं से मुक्ति दिलवा कर हमारा आत्यंतिक कल्याण कर सकता है।

'स्वामिनारायण महामंत्र' का रहस्य

'स्वामिनारायण महामंत्र' आज के कलियुग में एक खूब ही चेतन, समर्थ और जीवंत दिव्य विग्रह महामंत्र है। इसे किसी भी प्रकार की खास विधि की जरूरत नहीं है और धर्म, ज्ञाति, जाति, रंग, भाषा, दर्ज़ा या ऐसे किसी भी प्रकार के भेद बिना सभी प्रकार के लोग किसी भी स्थल, किसी भी समय या कैसी ही परिस्थिति में उसका रटन करके, उसका ठोस फल अचूक प्राप्त कर सकते हैं। वह मंत्र है–**'स्वामिनारायण'** महामंत्र। *पूर्ण पुरुषोत्तम श्री सहजानंदस्वामी (भगवान स्वामिनारायण)* ने आज से **करीब 200 वर्ष पहले गुजरात के 'फणेणी' गांव में इस महामंत्र का प्रथम उद्‌घोष किया था।**

इस सर्वोपरि 'स्वामिनारायण' महामंत्र की सच्ची महत्ता 'प्रत्यक्ष एकांतिक सत्पुरुष' माने गए ब्रह्मस्वरूप संत द्वारा दी गई मंत्रदीक्षा से उसमें उद्‌भावित होती

अद्‌भुत शक्ति और प्रभाव में है। यह एक जीवंत मंत्र होने के कारण, जीवन के हर एक क्षेत्र में और हर एक प्रसंग में अचूक फल देता है।

इसकी सच्ची फलश्रुति प्राप्त करने के लिए मात्र एक ही शर्त है – मंत्र का रटन भगवान और प्रगट सत्पुरुष के प्रति प्रेम, विश्वास और भक्तिभाव से होना चाहिए; देवरूप की भावना से अर्थात्– सद्‌गुरु के साथ तादात्म्य के भाव से और बालक जैसी निर्दोषता व दिल की सच्चाई एवं मानसिक प्रामाणिकता से सत्पुरुष के मार्गदर्शन में होना चाहिए।

'स्वामिनारायण' तत्त्वज्ञान में प्रत्यक्ष एकांतिक सत्पुरुष को 'मंत्र' के मूल आधार या स्रोत के रूप में गिना जाता है जो कि 'दीक्षा' दे सकते हैं। तीव्र अभीप्सा और गुरु के प्रति श्रद्धा रखने वाले सच्चे सत्य शोधक बहुत ही कम समय में खूब प्रगति साध सकते हैं; क्योंकि गुरु की संकल्पशक्ति उसमें निहित होती है, जो कि अति सूक्ष्म और शक्तिशाली आंदोलनों जैसी है; जिसे स्थल, काल या परिस्थिति की मर्यादा बाधारूप नहीं होती। अनादि अक्षरब्रह्म के साथ गुरु का स्वतः तादात्म्य होने के कारण, वे भगवान के करण और शक्ति के मूल स्रोत बने रहते हैं। **आध्यात्मिक गुरु परंपरा द्वारा कल्याणकारी गुण और आशीर्वाद पाकर वे पूर्ण रूप से 'अहंरहित' हुए होते हैं। तंत्रशास्त्र के मुताबिक ऐसे गुरु *'शक्तिपात'* करने के अधिकारी होते हैं।**

सत्पुरुष के चरणों में समर्पित भाव से रह कर, बालक की भाँति भक्तिभाव से इस महामंत्र का रटन करने से हृदयकमल में रही आत्मा जागृत हो जाती है और प्रत्यक्ष सद्‌गुरु की कृपा से 'दिव्य दृष्टि' सहज ही प्राप्त होती है, जिसे अंतर्दृष्टि या पूर्णदृष्टि या आध्यात्मिक दृष्टि कहते हैं। मंत्र के तांत्रिक सिद्धांत का यह खरा सार है।

महामंत्र के नाम रटन की अद्‌भुत, उदार, उदात्त, सर्जनात्मक और जीवन के सभी पहलुओं को लेती हुई यह कैसी अत्यंत सरल पद्धति है, जो मानवजाति को भुक्ति और मुक्ति देती है! यहाँ प्राणिक मंत्रजाप के द्वारा अक्षरब्रह्म का प्रकाश, प्रणवनाद और बीजरूप तत्त्व दिव्य प्रेम और करुणा से सतत बहते सर्जनात्मक आंदोलनों में परिवर्तित होते हैं।

शरीर में प्राण है, तब तक ही सारी बाबतों का अस्तित्व है, संदर्भ है। *कौशीतकी उपनिषद्* **में प्राण को सभी के जीवन स्रोत के रूप में वर्णित किया गया है।** *निरुत्तर तंत्र* **कहता है कि 'ह'कार द्वारा वह शरीर के बाहर जाता है और 'स'कार द्वारा वह शरीर में पुनः प्रवेश करता है। यूँ प्राण को जीवनदाता शक्ति के रूप में वर्णित किया है, जो भौतिक रूप से श्वासोच्छवास में रहता**

है। श्वास (पूरक) में वह 'स' यानि शक्तिरूप में और उच्छवास (रेचक) **में वह 'ह' यानि शिवरूप में रहता है। यूँ 'स'कार और 'ह'कार में अगाध आंतरिक शक्ति रही है, जो सर्जनात्मक और जीवनदायी शक्ति बन कर मानवजाति को आनंद, मुक्ति एवं भगवान का साक्षात्कार कराने में सक्षम है। ये सभी शक्तियाँ-लाक्षणिकताएं सहजानंदस्वामी ने 'स्वामिनारायण' महामंत्र में रखी हैं।**

योग्य मार्गदर्शन में इस महामंत्र का सुचारु रूप से कोई रटन करे, तो वह उसे अपने मूल स्वरूप की पहचान करवा कर, उसे आद्य शक्ति और शक्ति के उद्‌गम तक ले जाता है। प्राण जो कि सभी सर्जनात्मक तत्त्वों की सर्जनशक्ति का मूल स्रोत है और जिसकी चैतन्यशक्ति स्वतः है, वह स्वयं यहाँ दिव्य नाम रटन में **'सहजानंद'** के रूप में आविर्भाव को पाता है। **'सहज'** यानि कुदरती-बिना प्रयास और **'आनंद'** यानि भावसमाधि। इस शब्द के प्रत्येक अक्षर का अर्थ, उसकी महिमा और उसका सामर्थ्य निम्न प्रकार है–

स– बोलते ही सभी ***दुःख नष्ट*** होते हैं।
ह– बोलते ही ***हरि*** यानि कि प्रभु मिलते हैं।
ज– बोलते ही ***विजय*** प्राप्त होती है।
न– बोलते ही ***निर्भय*** हो जाते हैं।
द– (**ददामि**) उच्चारण करते ही ***समृद्धि की वर्षा*** होती है।

सभी मंत्रों का मूल उद्‌गमरूप इस दिव्य विग्रह जीवंत मंत्र– **'स्वामिनारायण'** मंत्र का रटन करने से **'अक्षरधाम'** की प्राप्ति होती है।

अनादि मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामी ने भी उनकी बातों *('ब्रह्मविद्या' प्रकरण 1 की 154, प्र. 5 की 132)* में इस दिव्य विग्रह जीवंत महामंत्र– 'स्वामिनारायण' मंत्र की महिमा गाने और उसका सतत जाप करने वाले को वरदान देते हुए कहा है कि मंत्र के जाप से....

1. काले नाग का ज़हर तक उतर जाता है।
2. जीव पंचविषय के राग से मुक्त बनता है।
3. जीव ब्रह्मरूप बनता है।
4. रोग मिट जाता है।
5. काल, कर्म और माया के बंधन से मुक्ति मिलती है।

तंत्रविद्या की तरह, स्वामिनारायण तत्त्वज्ञान में भी 'मंत्र दीक्षा' सच्चे सद्गुरु द्वारा लेने की प्राथमिक आवश्यकता है। सद्गुरु द्वारा मिली यह 'मंत्रदीक्षा' इतनी अधिक प्रभावशाली होती है कि उसका वर्णन शब्दों में करना अशक्य है। केवल गुरु और शिष्य ही आपस में उसके प्रभाव को महसूस कर सकते हैं।

स्वामिनारायण संप्रदाय में सामान्यतः सच्चा सत्यशोधक, गुरु की शक्ति और क्षमता को पूर्णतया परख कर उनसे प्राथमिक तौर पर दीक्षा लेता है, जो 'वर्तमान (नियम) धराने' या 'ब्रह्मसंबंध' करने के रूप में पहचाना जाता है। जीव के अंतरतम बीज रूप संस्कार का विस्फोट होना और प्रभु संबंध का सतत ख्यालभरा नवजन्म होना खूब जरूरी है। गुरु द्वारा मिली मंत्रदीक्षा से इस प्रक्रिया का प्रारंभ होता है। इस **'वर्तमान' या 'ब्रह्मसंबंध' से सभी पूर्व कर्मबंधनों से मुक्ति मिलती है और पूर्वजन्म के अनेक बीजरूप संस्कार एवं अव्यक्त स्मृतियाँ तत्काल जल कर खाक हो जाती हैं।** पर, इस तरह की दीक्षा पाने के बाद भी शिष्य को इस जीवन के अच्छे-बुरे कर्मों का फल तो भुगतना पड़ता ही है। बल्कि **भगवान स्वामिनारायण** ने तो वचनामृत गढडा मध्य 62 में बताया है–

जो भक्त 'बालक' की भांति हर रोज केवल 12 मिनिट भी यदि इस महामंत्र का सच्चे दिल से भक्तिपूर्वक प्राणिक अजपाजप करे, तो इससे भी उसे मुक्ति मिलती है।

मुंबई में गणेशपुरी के संत **पू. मुक्तानंदबाबा** ने 'सोहम् जप' में जपयज्ञ को सबसे अधिक महत्त्व दिया है। उनके मुताबिक जाप पहले प्राण के साथ घुल जाता है और फिर प्राण के साथ-साथ हृदय कमल तक पहुंचता है। वहाँ से वह, शरीर के साथ मुख्य चक्रों में पहुंच कर इसमें विलीन हो जाता है। मंत्र प्राण में विद्युत प्रवाह का संचार करता है, जो शरीर और मन को शुद्ध करता है। मंत्र, उसका देवता और परमतत्त्व–ये तीनों, साधक के मन में एकाकार होकर, ऐसे स्पंदन उठाते हैं जिससे कि साधक को भीतर में मंत्र का स्वतः एहसास होने लगता है। यूँ, मंत्र को वह परमात्मा का ही स्वरूप गिनता है। सो, **मंत्र द्वारा परमात्मा के साथ जो एकता स्थापित करते हैं, वे ही सच में जपयज्ञ करते हैं।** 'जपयज्ञ' या 'अजपाजप' वह सतत कुदरती श्वासोच्छवास के साथ अंतर में होता नामरटन है, जिससे नाभिचक्र जागृत होने पर गुरु की स्मृति और उनके वचन का सहज ही ध्यान हुआ करता है। इससे 'मंत्र चेतना' जागृत होकर परमात्मा के साथ तादात्म्य साध लेती है। यह समग्र प्रक्रिया, प्राणायाम के माध्यम से सच्चे सद्गुरु के आशीर्वाद एवं मार्गदर्शन में

की जाती है। इसी सिद्धांत और प्रक्रिया को **मूल अक्षरमूर्ति सद्‌गुरु गुणातीतानंदस्वामिजी** ने पहले प्रकरण की आख़िरी बात में खूब ही सचोट रूप से समझाते हुए कहा है–

'कथा करें, कीर्तन करें, बातें करें लेकिन यह देह मैं नहीं हूँ, यूँ नहीं माना जाएगा। आठों प्रहर भजन करना कि मैं देह नहीं; किन्तु देह में रही ऐसी आत्मा हूँ, ब्रह्म हूँ, अक्षर हूँ और मेरे भीतर परमात्मा परब्रह्म पुरुषोत्तम प्रगट प्रमाण अखंड रहे हैं। वे कैसे हैं? तो सभी अवतारों के अवतारी हैं, सर्व कारणों के कारण हैं और सबसे पर हैं; मुझे प्रगट रूप में ये जो मिले हैं, वही हैं। इस बात में सांख्य और योग दोनों आ गए।' *(ब्रह्मविद्या–प्र. 1-343)*

विश्वभर के सभी धर्मों के मूलभूत सिद्धांत तो एक जैसे ही होते हैं, परंतु चेतना के शुद्धिकरण के लिए जीवन में परिवर्तन लाने, जड़ प्रकृति की निर्मूलता और परमात्मा की प्राप्ति या आत्यंतिक कल्याण की रीति-नीति में वे मूलतः अलग पड़ते हैं।

प्रारंभिक अनिवार्य शर्त यह है कि अभी तक अंतर्मन में संग्रहित पूर्वजन्म की अव्यक्त स्मृतियों, बीजरूप संस्कारों और अहम् ममत्त्व की ग्रंथि जिसे *'कारण शरीर'* भी कहा जाता है, उससे जीव को मुक्त करना। स्थूल या सूक्ष्म स्तर पर शायद प्रगति हो सके, मानसिक या चैतसिक भूमिकाओं को भी शायद लांघ सकें, परंतु जीव को चिपके अहंता और ममतारूपी 'कारण शरीर' के बीजरूप संस्कार का निर्मूल होना अशक्य होने के कारण, मूल अज्ञान टलता नहीं है। किसी तरह भी मन*'निर्वासनिक'*– यानि की इच्छा और अपेक्षा रहित होना चाहिए एवं स्वभावरहित यानि कि स्वाभाविक प्रकृति के बंधन से मुक्त होना चाहिए। हमारा एक नवजन्म होना चाहिए और हमारी मूलभूत स्वाभाविक जड़ प्रकृति का संपूर्ण रूपांतर होकर 'चैतन्य प्रकृति' का देह बंधना चाहिए। **हमारे स्वप्रयत्नों-पुरुषार्थ या तपस्या से यह शक्य नहीं है।** जैसे कोई व्यक्ति नदी या खाड़ी तैर सकता है, लेकिन समुद्र नहीं तैर सकता। **समुद्र तैरने के लिए जहाज की जैसे जरूरत पड़ती है, वैसे ही भवसागर पार करने के लिए सच्चे सद्‌गुरु रूपी जहाज की जरूरत पड़ती ही है; क्योंकि हमारी शक्ति मर्यादित है और हमारे अज्ञानी मन से करे हुए सभी साधन प्रभु को पहुँचते ही नहीं। हम साधन द्वारा जो भी क्रिया करते हैं,** उसमें उसकी खासियत-उसके गुण का प्रभाव रह ही जाता है। **मानव मन में वह अज्ञान, वह द्वंद्व, तारतम्यता, विसंवादिता और भेदभाव रहा ही है–जैसे अर्जुन को रहा था।**

परम तत्त्व के संपूर्ण ज्ञान और साक्षात्कार के लिए जीव भी पूर्णरूप से शुद्ध और स्वतंत्र होना चाहिए। मानसिक भूमिका या प्राण की भूख से त्रस्त, कैसी भी शक्तिशाली या सर्जनात्मक चेतना अज्ञानरूपी अंधकार में रहते हुए ऐसी शुद्धता एवं स्वतंत्रता को पा ही नहीं सकती।

अक्षरपुरुषोत्तम की युगल उपासना, साधना की इस सरल पद्धति और 'स्वामिनारायण महामंत्र' द्वारा ऐसी योग्य भूमिका निर्मित हुई है।

'भागवती दीक्षा' के रूप में पहचानी जाती एक दूसरे प्रकार की दीक्षा भी है, जहाँ गुरु की आज्ञा से शिष्य संसार को त्याग कर, भगवा वस्त्र धारण करके शेष जीवन केवल गुरु की ही आज्ञा के मुताबिक, प्रभु और प्रभु के अखंड धारक संत के चरणों में समर्पित करके, भगवद् भक्ति और सत्कर्म में बिताता है। इससे उसे न केवल जीतेजी ही मुक्ति मिलती है, बल्कि उसे आत्यंतिकी मुक्ति, चैतन्यशुद्धि, शाश्वत् आनंद, चित्तीशक्ति और कुंडलिनी शक्ति – यूँ पाँचों प्रकार से भगवान का ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

हालाँकि, शास्त्रों में तो कहा गया है कि ऐसे अविभाज्य प्रारब्ध और प्रकृति मृत्यु के बाद भी मानव के सूक्ष्म शरीर के साथ ही रहते हैं; परंतु भगवान स्वामिनारायण ने इस 'मंत्रदीक्षा' द्वारा मोक्ष के द्वार रूप सत्पुरुष के माध्यम से, प्रकृति के आमूल रूपांतर की इस समग्र प्रक्रिया में संपूर्ण क्रांति ला करके, साधक के लिए ब्राह्मीस्थिति प्राप्त करना शक्य बनाया है। जीतेजी ही सिद्धदशा प्राप्त करके सर्वोच्च सुख, शांति, आनंद और शक्ति का भोक्ता बन कर ब्रह्मस्वरूपी कक्षा में वह परब्रह्म की अप्रतिम अनंतता और अगाधता की अनुभूति करता है; फिर भी प्रभु के पास वह स्वामी-सेवकभाव से रहता है।

जिन्होंने केवल 'वर्तमान' ही लिया हो, उनके लिए भी भगवान स्वामिनारायण ने वच. ग.प्र. 56 में खातिरी दी है –

*'ऐसा जो भक्त हो, वह तो यूँ समझता है कि चाहे कैसा भी पापी क्यों न हो, पर अंत समय में यदि वह **'स्वामिनारायण'** नाम का उच्चारण करे, तो वह सभी पापों से छूट कर **'ब्रह्ममहोल'** में निवास करता है! तो, जो उन भगवान का आश्रित होगा, वह तो भगवान के धाम को पाएगा ही, इसमें क्या संशय? अतः जो भगवान का भक्त हो, उसे तो सत्संग करके भगवान की उपासना का बल दिन-प्रतिदिन बढ़ाना चाहिए।'*

इसके अतिरिक्त शक्तिपात, हंस दीक्षा, संकल्पदीक्षा जैसी दीक्षा के दूसरे भी प्रकार हैं।

भगवान स्वामिनारायण ने (वच. लोया 6, 16, सारंगपुर 11 इत्यादि) कई वचनामृतों में अजपाजप के रूप में, इस महामंत्र की असाधारण विशिष्टता को दर्शाया है। इससे भी अधिक उनके रहने का साक्षात् दिव्य अक्षरधाम ऐसे **मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी** ने भी अपनी बातों में इस महामंत्र की अजपाजप पद्धति का प्रतिपादन किया है।

'शुद्ध आध्यात्मिक गुरु परंपरा की अखंडता'

भगवान स्वामिनारायण द्वारा मानवजाति को दिया यह सबसे बड़ा वरदान है। उनके उत्तराधिकारी *मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी, अनादि महामुक्त भगतजी महाराज, अनादि महामुक्त जागास्वामी, अनादि महामुक्त कृष्णजीअदा, ब्रह्मस्वरूप गुरुहरि शास्त्रीजी महाराज और ब्रह्मस्वरूप गुरुहरि योगीजी महाराज* ने उनका दिव्य संदेश सर्वत्र व्यापक बनाया। आज भी, योगीजी महाराज के दिव्य वारिसदार गुणातीत सत्पुरुषों द्वारा यह शुद्ध परंपरा ऐसी ही अखंडित रही है। कोई भी श्रेयार्थी साधक इन सत्पुरुषों के समागम में, प्रभु के दिव्य सान्निध्य की प्रतीति कर सकता है।

सच्चे सत्पुरुष –

- **किसी को कभी भी अपने किसी प्रकार के दबाव में रखते नहीं हैं,**
- **किसी बात की ज़बरदस्ती करते नहीं**
  तथा
- **किसी का मन भरमाने की तुच्छ चालाकियाँ करते नहीं हैं।**

बल्कि, वे तो सत्यशोधक को ठोस अनुभूति द्वारा सनातन सत्यों और रहस्यों की पहचान कराते हैं, जिससे कि वह विश्वासपूर्वक सद्गुरु की शरण में आता है। यहाँ सच्चे अर्थ में गुरु शिष्य के बीच आध्यात्मिक संबंध प्रस्थापित होता है। जब तक ऐसे सद्गुरु न मिले हों, तब तक साधक को खुल्ले रहकर परम दिव्य तत्त्व पर ही भरोसा रख कर अभीप्सा करनी चाहिए। सच्चे सद्गुरु तो हमेशा प्रकाश फेंकते रहते हैं और जिसे अपना आध्यात्मिक ज्ञान संपूर्णरूप से दे सकें, ऐसे मुमुक्षु को ढूँढते रहते हैं–अपनाते रहते हैं। उन सब की रीति-नीति, प्रणाली भिन्न-भिन्न हो, लेकिन उनका ध्येय एक ही होता है कि जो उन्हें समझ कर दिल की सच्चाई और प्रीति से उनका अनुसरण करे, उसे अपना संपूर्ण आध्यात्मिक वारसा देना है!

यूँ, *'जीवंत दिव्य विग्रह मंत्र'* का यह एक अति ठोस पहलू है। ऐसे दिव्य विग्रह मंत्र को संपूर्ण रूप से समझ कर और महिमा जान कर यदि एक प्रणाम भी किया हो,

तो वह दस हज़ार अश्वमेध यज्ञ जितना फल देता है। सो ही श्रीजी महाराज के एक परमहंस ने तो यहाँ तक कह दिया है कि ऐसा जीवंत दिव्य विग्रह *'स्वामिनारायण'* महामंत्र *'गायत्री मंत्र'* से लाख गुणा अधिक शक्तिशाली है; क्योंकि परम दिव्य तत्त्व का असीम प्राकृतिक प्रकाश उसमें समाया है, न कि कोयला या डीज़ल फूँक कर या अन्य तरीके से उत्पन्न किया कृत्रिम प्रकाश जैसा! इस मंत्र में सभी अनिष्ट तत्त्वों को नष्ट करने की, जीव को सभी पापों से मुक्त करने की, सभी प्रकार के दर्दों को मिटाने की और काल, कर्म और माया के बंधन से छुड़वा कर जीव को *'ब्रह्मस्वरूप'* की कक्षा तक पहुंचाने की क्षमता है। इस प्रकार स्वामिनारायण महामंत्र जितना सामर्थ्य और प्रभाव अन्य किसी मंत्र में नहीं है।

इससे, हमारा हेतु दूसरे मंत्रों की शक्ति का अवमूल्यन (डिवॅल्युएशन) करने का बिल्कुल नहीं है। परंतु हम विनम्रता से यही कहना चाहते हैं कि आज के कलियुग में वेदोक्त या पौराणिक मंत्र विधिपूर्वक नहीं होने से सक्षम नहीं रहे। इससे भी अधिक, **आज इन मंत्रों को सिद्ध किए हुए कोई देवता या ऐसे सत्पुरुष प्रगट नहीं हैं, जो जीवात्मा को कर्म के बंधन से मुक्त करा कर एवं उसे शुद्ध करके ऊर्ध्वगामी बनाएं और उसकी प्रार्थना तत्काल सुनें।** बेशक, इन मंत्रों से संस्कार पड़ते हों या क्षणिक मानसिक शांति भी मिले, परंतु सच्ची आध्यात्मिकता से वे खूब दूर हैं और अंतरचेतना को जाग्रत करने की या उसका संपूर्ण रूपांतर करने की क्षमता इन मंत्रों में नहीं होती।

मंत्र सिद्धि निम्न अलग-अलग प्रकार से कर सकते हैंः

1. *तुलसी की माला से जाप करने से*
2. *महापूजा में नामरटन से*
3. *सत्पुरुष के पास योग्य मंत्र दीक्षा लेकर, उनके सीधे मार्गदर्शन में जाप करने से*
4. *खास दीक्षा दिए हुए और पसंद किए कई शिष्यों को सत्पुरुष या ब्रह्मस्वरूप संत खुद विशिष्ट प्रकार से साधना कराते हैं।*

1. तुलसी की माला की पेशी सबसे पहले भगवान विष्णु ने की। तुलसी के पवित्र पौधे के दानों को पसंद किया और भगवान की पूजा में उन्होंने खास तुलसी के पत्तों का भी इस्तेमाल करने का अनुरोध किया। तुलसी की माला से किया मंत्रजाप, माला बिना किए मंत्रजाप की अपेक्षा अधिक असरकारक साबित हुआ है। माला में 108 मनके होते हैं और किसी भी मनोवांछित प्राप्ति के लिए ऐसी 18,000 माला

का मंत्रजाप करना–यह एक आदर्श भक्ति मानी जाती है। शास्त्रों और पुराणों ने भी भक्ति की इस रीत को सहमति देकर प्रमाणित किया है।

(सद्. शुकमुनि द्वारा रचित ग्रंथ 'सत्संगजीवन' से)

2. जपयज्ञ के दूसरे प्रकार में *'पुरुषसूक्त'* में बताए मुताबिक फल, फूल, पत्र, दीप, अगरबत्ती इत्यादि षोड्षोपचार द्वारा महापूजा में उपरोक्त प्रकार से जाप किया जाता है। ऐसी पूजा सहित किया सतत नाम रटन, माला के साथ किए गए जाप की अपेक्षा ज्यादा लाभदायी सिद्ध हुआ है।

3. तीसरे प्रकार में इसी 'स्वामिनारायण' महामंत्र का जाप सद्‌गुरु के सीधे मार्गदर्शन में किया जाता है, जहाँ सद्‌गुरु शिष्य पर विशेष कृपा और आशीर्वाद बरसा कर इस मंत्र पर ध्यान केन्द्रित करने की शक्ति प्रदान करता है।

4. चौथा प्रकार इन सभी में सबसे श्रेष्ठ है, जिसमें पसंद किए हुए कुछ शिष्य ब्राह्मीस्थिति में प्रवेश करने की तीव्र अभीप्सा रख कर, सत्पुरुष के प्रति अगाध प्रेम और भक्ति से उनके द्वारा बताई रीति के मुताबिक इस मंत्र की आराधना करते हैं।

ये सभी रीतियाँ निम्न चार तबके से गुजरती हैं।

पहले तबके में साधक किसी भी अन्य शब्द की भांति 'मंत्र' का भी बार-बार रटन करता है, लेकिन वह सिर्फ यांत्रिकरूप से ही होता है। फिर भी यदि वह ठीक से–यानि कि ब्रह्ममुहूर्त में (सुबह 4 से 6 के दौरान) एक निश्चित स्थान लेकर निर्धारित समय तक किया जाए, तो उससे साधक के मन को कुछ शांति मिलती है। दवाई के घटकों की जानकारी न होने के बावजूद, इससे वह जरूर अच्छा हो ही जाएगा। यूँ एक भरोसे से दर्दी डॉक्टर की दवाईयाँ जैसे लेता रहता है; वैसे भले ही साधक मंत्र की विशिष्ट शक्ति को जानता नहीं, फिर भी जो भी फल प्राप्त हो, उसके लिए वह यहाँ कम से कम खुला रहकर जाप करता रहता है। सो, वही सिद्धांत यहाँ काम करता है।

ऊपरी तबके से साधक धीरे-धीरे दूसरे तबके में प्रवेश करता है। यहाँ भी वह यांत्रिक रीति से ही मंत्रजाप करता है, पर यहाँ उसका मन भी पिरोया हुआ होता है। उसे 'मंत्रशक्ति' की जानकारी होती है, परंतु उसमें प्रेम और अहोभाव की कमी होती है। बेशक, प्रथम प्रकार की अपेक्षा यह रीति ज्यादा अच्छी है। मंत्र के प्रभाव से यहाँ प्रभु के प्रति के उसके रवैये में बदलाव आता है और अपने मानसिक मूल्यांकन से मंत्रशक्ति की महिमा जानकर उसका जाप करता है।

तीसरे तबके में साधक 'स्वामिनारायण' महामंत्र का अर्थ और उसकी महिमा को समझने का प्रयास करता हुआ प्रेम और श्रद्धा से मंत्र का महत्त्व समझ कर मन से उसका सतत जाप करता है। दूसरे तबके में भी ऐसा सतत जाप तो होता ही है, परंतु वह सिर्फ मानसिक और यंत्रवत् ही होता है। सो, सच्चा सुख, शांति या आनंद उसे प्राप्त नहीं होता। इस तीसरे तबके में तो–नाभि के जागृत होने से कुंडलिनी शक्ति जाग्रत होती है और सच्चे साधक को अपार सुख और आनंद का अनुभव होता है। इस प्रक्रिया को *'अजपाजप'* भी कहते हैं।

अंतिम और अति सूक्ष्म ऐसी चौथी कक्षा में साधक प्रत्यक्ष सद्‌गुरु या ब्रह्मस्वरूप संत के चरणों में संपूर्णरूप से समर्पित होकर, इस **'तांत्रिक जीवंत महामंत्र'** का जाप करता है। यहाँ साधक संपूर्ण जाग्रतता, आंतरिक वफादारी और दिल की सच्चाई से पल-पल सत्पुरुष में अखंडवृत्ति रखते हुए, सतत सावधानी से साक्षीभाव में रहता है। संत के वचन से स्वरूप की यथार्थ पहचान या प्रत्यक्ष की परिपक्व निष्ठा होने पर, साधक **स्वरूप उपासना** करता है। उसकी फलश्रुति रूप उसे पक्की अनुभूति होती है और अंतर में तत्काल प्रकाश होता है। यहाँ गुरु और शिष्य दोनों साधना करते हैं। साधक संपूर्ण श्रद्धा और भक्तिपूर्वक गुरु का 'गुणातीत भाव से सेवन करता है और स्वयं 'मंत्रसिद्ध' बन जाता है।' गुरु उसे योग्य दीक्षा देकर हर एक तबके पर सतत मार्गदर्शन देते रहते हैं। साधक को सर्वोच्च स्थिति पर कहें या पूर्णता पर पहुँचा कर, उसकी प्रतिभा को संपूर्णतया विकसित करने के लिए, गुरु स्वयं किसी भव्य इमारत के शिल्पी की भांति खुद ही सामान्य मज़दूर, आर्किटेक्ट या इंजीनियर की भूमिका निभाता है। **सच्चे सत्पुरुष के साथ का आत्मीय संबंध और उसके मार्गदर्शन में यदि साधक सुचारु रूप से इस दिव्य विग्रह मंत्र का जाप किया करे और उस मंत्र से ही चिपका रहे, तो उसे खूब फायदा होता है और सात दिनों में ही सिद्धि प्राप्त हो सकती है।**

ब्राह्मण एवं योगी की संध्यापूजा की भांति **यह सारा प्रयोग दिन में तीन बार तकरीबन एक से सवा घंटे तक व्यवस्थित रूप से करना चाहिए।**

किसी भी आध्यात्मिक साधना की सच्ची फलश्रुति आध्यात्मिक समता के रूप में प्रतिबिंबित होती है; जो जीवन को ऊर्ध्वगामी, सर्जनात्मक और संपूर्ण रूप से चेतनाशील बनाती है। **धीरे-धीरे जाग्रति आने पर साधक भूतकाल को भूलकर, भविष्य की चिंता (प्रगट प्रभु पर) छोड़कर, अधिक से अधिक समय वर्तमान में ही जीता है और रोज-बरोज बनते जीवन के सभी प्रसंगों को खूब सहजता**

से और जाग्रतता से स्वीकार करके आनंद में रहता है। धीरे-धीरे उसमें प्रेम, मैत्रीभाव, करुणा, सहानुभूति, सहनशीलता, सरलता, साधुता, सादगी, विनम्रता, निर्भयता और निश्चिंतता जैसे दिव्य गुणों का विकास होता है।

यह कोई चमत्कार या जादू नहीं, बल्कि –
साधक पूर्णरूप से नवजन्म पाकर
एक खूब ही चेतनशील सर्जनात्मक और प्रतिभाशाली-पूर्ण व्यक्ति बन कर
एक आध्यात्मिक ***अणु*** की भांति
प्रेम और मैत्रीभाव का झरना बहाकर
सत्संग में, समाज में या विश्व में सर्वत्र
एक दिव्य कुटुंब की भावना से
सभी के साथ रसबस होकर
केन्द्रवर्ती बन जाता है!

‘सर्वोपरि स्वामिनारायण’–क्यों?

[पुराने जोगियों ने प.पू. काकाजी के आशीर्वचन में कई बार सुना है–
‘सर्वोपरि स्वामिनारायण।’ *अर्थात् वे यह कहना चाहते थे कि–* ***‘तुम किसी व्यक्ति, शक्ति, पदार्थ, प्रसंग, देश, काल, क्रिया आदि को देख कर क्यों प्रिकंडीशन्ड माईन्ड से मूल्यांकन करने लगते हो? क्यों नए प्रारब्ध खड़े करते हो? क्यों दुःखी, उदास या व्यथित हो जाते हो? ऐसा क्यों नहीं मानते कि सर्व कर्ता-हर्ता, प्रेरक, नियंता मुझे मिले मेरे प्रभु ही हैं? हर एक पर कन्ट्रोल तो उसी सर्वोपरि भगवान की सत्ता का है।’***
वे बार-बार कहते – अन्य सभी आधार छोड़ कर सर्वोपरि प्रभु की सत्ता को दिल की सच्चाई से स्वीकार करके भजन का ही एकमात्र आधार लो। *स्वयं उन्हें भी निरंतर भजन करते हम में से अनेकों ने देखा है। प्रगट प्रभु के साथ ऐक्य साध कर, तल्लीन होकर, जपनाद करते हुए उनके दर्शन करना भी जीवन का एक अनमोल मौका था।*

*भजन करने की उन्हें कोई जरूरत ही नहीं थी; वे तो गुरुहरि योगीजी महाराज के पसंदीदा पात्र – श्रीजी के अखंड धारक थे। उन्होंने वह हमारे लिए किया! तो, प.पू. काकाजी द्वारा बोले गए मार्मिक व रहस्यपूर्ण शब्द–****‘सर्वोपरि स्वामिनारायण’*** *को विविध पहलुओं द्वारा समझें और हमारे जीवन की धन्यता का एहसास करें।]*

पशु से लेकर जब से मानव जीवन शुरू हुआ तभी से पृथ्वी पर अनेक संप्रदाय, आचार्य, अवतार, सिद्धपुरुष या पैगम्बर एवं ऐसे संत प्रगट होते रहे हैं और रहेंगे ही। बदलते युग के साथ-साथ उन्होंने नया युगधर्म प्रवर्ता कर एकांतिक धर्म की समझ भी दी; परंतु, **जीव को सरलता से ब्रह्मरूप करके जीतेजी** परमतत्त्व का-परमपद का या ब्रह्ममहोल-अक्षरधाम की प्राप्ति का आनंद और सुख सभी को मिले ऐसा सुगम, संपूर्ण, सरल व सर्वजीवहितावह एवं देश, काल, क्रिया, स्थान, गुण, शक्ति, जाति आदि **सभी भेदों से परे** ऐसा जो **सनातन-सर्वोत्तम परम कल्याण का मार्ग भगवान स्वामिनारायण ने खुल्ला किया, यही उनके सर्वावतार के अवतारी होने का प्रमाण है।**

कई कहते हैं कि ये तो अपनी डींगे मारते रहते हैं कि ‘स्वामिनारायण’ सर्वोपरि हैं; पर, उसके कई कारण हैं जिससे कि निष्ठा वाले भक्तों के मुँह से अपनी यह अनुभूति-अपना यह विश्वास अनायास ही निकल जाता है या वे दावे से एकदम यूँ बोल देते हैं।

सो, हम इसे किसी अन्य धर्म की न्यूनता, किसी पर कटाक्ष, निंदा या तुलना की अपेक्षा अपनी विशेषता जताने की भावना न समझें, बल्कि ऐसे ठोस सबूत होने के कारण इन बातों को स्वीकारें।

(1) भगवान स्वामिनारायण ने धरातल पर पुण्यभूमि भारत में अवतार लेकर, प्रभु की शाश्वत् छत्रछाया अर्पण करके मानवजाति को सदैव के लिए सनाथ बनाया। ***''जब तक पृथ्वी का तल रहेगा, तब तक 'यावच्चन्द्र दिवाकरौ' मैं मेरे निर्मल व गुणातीतभाव को पाए संतों द्वारा पृथ्वी पर अखंड प्रगट रहूंगा''*** यह आशीर्वचन देकर उन्होंने करुणा बरसा दी! सच्चे शाश्वत् सुख का रास्ता सदा के लिए खुल्ला कर दिया... अनादि अक्षरधाम के व्यक्तिस्वरूप मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी को साथ लाए और उनके माध्यम से पुरुषोत्तमनारायण के असली स्वरूप और ख़मीर के ज्योतिर्धरों की संतप्रणालिका पृथ्वी पर अखंडित जारी रखी। यूँ **अक्षुण्णरूप में दीपक से दीपक सदैव जलता रखा, यही स्वामिनारायण की सर्वोपरिता है–बेमिसाल विशिष्टता है। प.पू. काकाजी के शब्दों में– इनकी हाईरारकी-परंपरा कॉन्स्टन्ट एण्ड कॉन्टीन्यूअस रही। जो दीप से दीप जला कर जाए वो सर्वोच्च विभूति,** वो भगवान स्वामिनारायण ने किया!

एक मिस्टिरियस गति से महाराज धरातल पर अखंड रहे हैं। जीवंत प्रगट विभूति में रह कर अवतार कार्य आगे बढ़ा रहे हैं। **यह एक आश्चर्य है, फिर भी एक हक़ीक़त है!** और..... इसी कारण **'प्रगट की उपासना'** को भगवान स्वामिनारायण के सत्संग की विशिष्टता माना गया है। स्वयं के पुरुषोत्तमरूप का या पूर्णता का दर्शन उन्हें कितना अधिक स्पष्ट और मूर्तिमान होगा कि पात्र पसंद करके उसे सच्ची और संपूर्ण आध्यात्मिक गरिमा वे दे सके।

अपने जीवनकाल के दौरान जिन्होंने एक आध्यात्मिक एवं सच्ची प्रभुभक्ति का माहौल प्रगटाया हो, उन्हें हम अलौकिक विभूतियाँ मान लें या उनसे प्रभावित होकर उन्हें अवतारपुरुष भी भले ही गिन लें, पर–इनके गत होने पर वह आध्यात्मिक चेतना का स्रोत सूखने लगता है या चालू रहता है–यह सोचना बहुत जरूरी है।

आज अनेक संप्रदाय हैं, अनेक धर्म हैं–लेकिन ऐसी विभूति के अंतर्धान होने के बाद वह ज्योति जलती ही रही हो, ऐसा नहीं हुआ... अपने जैसा ही नूर रखा हुआ वारिसदार छोड़ा दिखाई नहीं पड़ता। विविध कक्षा के अवतार पुरुष पृथ्वी पर आए, लेकिन जैसे दीपक बुझने के बाद अंधेरा छा जाता है, वैसे ही उनकी आध्यात्मिक या ईश्वरीय विरासत उन सभी के पीछे अखंड नहीं रही। इनके **स्थूलरूप में रहने तक समाज में एक अद्‌भुत चेतनता जरूर प्रगटी, लेकिन**

उनके जाने के बाद उस संप्रदाय, मठ या आश्रम में मानो आध्यात्मिकता न रही हो–सूने हो गए ऐसा इतिहास और लोकानुभव में हमेशा आया है।

श्री रामचन्द्रजी कहो, जीसस कहो, श्री कृष्ण कहो या सिक्ख संप्रदाय भी... सिक्ख संप्रदाय को भी आख़िर यह कहना पड़ा कि अब **ग्रंथ साहेब** में से अमृत पिया करना! **पर, ग्रंथ साहेब में से भी हम अपने आप नहीं ले पाएंगे....** प्रगट सद्‌गुरु होने जरूरी ही नहीं, बल्कि अनिवार्य हैं। शास्त्रों का ज्ञान, समुद्र के पानी के समान बताया है। समुद्र में पानी खूब है, अगाध है। पर, वह पानी सीधा पी ही नहीं पाएंगे.... पीने में खारा लगेगा। इतना ही नहीं–उल्टी हो जाएगी। इसी तरह **शास्त्रों से हम अगर अपने आप ज्ञान लेने जाएंगे, तो पचा नहीं पाएंगे।** जबकि समुद्र का पानी सूर्य की गर्मी से भाप बन कर; फिर बादल द्वारा बारिश के रूप में नीचे आए, तब पिया जाता है। इसी तरह वही शास्त्र का ज्ञान ऐसे संत द्वारा हमें मिले, वही ज्ञान हमारे भीतर जम सकता है, हमें तसल्ली दे सकता है, हमारी आत्मा की भूख मिटा सकता है।

यूँ, भगवान स्वामिनारायण ने एक अद्‌भुत कार्य यह किया कि अपने जैसी ही विभूतियों की-संतों की **अक्षुण्ण परंपरा** धरती पर रख दी... यही **उनकी सर्वोपरिता की उत्कृष्ट एवं जीवंत निशानी है, जो कि–अन्य किसी जगह पर नहीं मिलेगी।**

अन्य जगहों पर उत्तराधिकारी नॉमीनेट करना पड़ता है, चुनना पड़ता है। गुणातीत परंपरा में उत्तराधिकारी न चुनना पड़ता है, न ही नॉमीनेट करना पड़ता है कि अब यह मेरा उत्तराधिकारी रहेगा। प्रगट का स्थान किसी को दिया या किसी से लिया नहीं जाता, वह तो अपने आप सिद्ध होता है; सो ही वे पूजे जाते हैं। शाम को सूर्य ढल जाता है और दूसरी सुबह जब उगता है, तब उसके तेज, उसके प्रकाश, उसकी गर्मी, उसकी ऊर्जा से अपने आप ही सभी को पता चलता है कि यह वो सूर्य उगा है। पूर्णत्व की पहचान और कोई क्या करा पाएगा? वह तो अपने आप ही असंदिग्धरूप से हो जाती है! वैसे ही भगवान स्वामिनारायण के बाद उनके जैसे ही ऐश्वर्य, सामर्थ्य, पूर्णता को पाए हुए मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी हुए, उनके बाद अनादि महामुक्त भगतजी महाराज, जागास्वामिजी, श्री कृष्णजी अदाश्री हुए, गुरुवर्य शास्त्रीजी महाराज, ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज हुए, उनके बाद गुरुहरि प.पू. काकाजी महाराज, प.पू. पप्पाजी महाराज–जिन्हें हमने देखा और प्रगट ब्रह्मस्वरूप प.पू. हरिप्रसादस्वामिजी, विश्व वंदनीय प्रगट ब्रह्मस्वरूप प.पू. प्रमुखस्वामी महाराज, प्रगट ब्रह्मस्वरूप प.पू. महंतस्वामिजी, प्रगट ब्रह्मस्वरूप

प.पू. अक्षरविहारीस्वामिजी, प्रगट ब्रह्मस्वरूप प.पू. साहेब एवं प्रगट ब्रह्मस्वरूप प.पू. दिनकरभाई विराजमान हैं। **स्वामिनारायण भगवान की यह एक अनपेरेलल फ़िचर-बेमिसाल देन है, जो और किसी जगह नहीं है।**

पाँच हज़ार साल पहले पुराण पुरुष श्री कृष्ण परमात्मा आए। उन्होंने अर्जुन को एक विराट दर्शन भी कराया। उसके दिल में एक ठंडक भी प्रदान करी। उसके जीवनरथ के सारथी भी बने। उसे स्पष्ट विश्वास के साथ एहसास भी कराया कि–**'अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।'** अर्जुन निःसंशय भी हो गया और उसे उसके ढंग से कल्याण की प्रतीति भी जरूर हुई। गाँव की अनपढ़ गोपियों को भी लगाव करवा कर मोक्ष की प्रतीति कराई। लेकिन श्री कृष्ण के अंतर्धान होने के बाद शुकजी जैसे, महाप्रभु वल्लभाचार्यजी जैसे, चैतन्य महाप्रभु जैसे कोई विरले ही श्री कृष्ण के भाव को पाकर, आश्रितों को मोक्ष की प्रतीति करा पाए।

यूँ, श्रेष्ठ विभूतियों, संतों और आचार्यों ने संप्रदायों, आश्रमों, मठों या मंदिरों की स्थापना करी, लेकिन उनके अंतर्धान होने के बाद वहाँ प्रभुता हमेशा सतत प्रगट नहीं रही। जगद्गुरु आदि शंकराचार्यजी, स्वामी रामतीर्थ, श्री रामकृष्ण परमहंसदेव, श्री रामदासस्वामी या महर्षि अरविंद-सभी जगहों पर **मूल प्रतिभाशाली पुरुष के अंतर्धान होने के बाद, ऐसी की ऐसी आध्यात्मिक चेतना सर्वांगी कक्षा पर समग्रतया जारी नहीं रह पाई।** जबकि **स्वामिनारायण भगवान ने वैसी की वैसी ही चेतना अखंड प्रगट रखी है और उनके सच्चे संत द्वारा प्रभु का सुख सभी को दिया है–मनवाया है। यही उनकी एक अवतारी पुरुष–पूर्णावतार के रूप की एक निजी विलक्षणता है और सर्वोपरिता है। पूर्ण अवतार के पृथ्वी पर पधारने की यह एक निशानी है। पूर्णत्व में से पूर्णत्व प्रगट होता ही रहा है-होता ही रहेगा!**

(2) अब तक के अवतार पुरुषों ने आश्रितों के योग और क्षेम की जिम्मेदारी ली, लेकिन **भगवान स्वामिनारायण ने जैसी और जितनी जिम्मेदारी ली है, उसका जगत के किसी भी सांप्रदायिक या आध्यात्मिक इतिहास में मुकाबला नहीं है।**

श्री कृष्ण ने गीता में विश्वासपूर्वक वचन दिया–

मेरे भक्त का नाश नहीं होगा।

ईसु ख्रिस्त ने कहा–

तुम्हारी फिक्र-चिंताएं मुझ पर छोड़ दो, मैं उठा लूँगा।

पर, भगवान स्वामिनारायण की करुणा की तो कोई सीमा ही नहीं। **तुम दुःखी नहीं**

होओगे यह वरदान तो कई अवतारों ने दिए, लेकिन स्वामिनारायण की सर्वोपरिता क्या? उन्होंने कहा कि–

तुम्हारे दुःखों में मेरी साझेदारी रहेगी। ऐसा मैत्रीपूर्ण संबंध उनकी सर्वोपरिता का एक और प्रमाण है।

इन्हें जब गद्दी पर बिठाया, तब इन्होंने गुरु रामानंदस्वामी के पास अपना दिल निचोड़ कर वरदान माँग लिया–

'आपके सत्संगी को एक बिच्छू के डंक का दुःख होने वाला हो, तो मेरे रोम-रोम में कोटि बिच्छुओं का दुःख हो, लेकिन आपके सत्संगी को वह न हो और आपके सत्संगी के प्रारब्ध में भीख माँगना लिखा हो, तो रामपत्तर मुझे देना; लेकिन आपके सत्संगी अन्न-वस्त्र से दुःखी न हों*–ये दो वरदान मुझे दे दो।'*

छोटे-बड़े किसी भी संकट में पड़े अपने आश्रित को वे कभी नहीं भूलेंगे, ऐसी हमेशा की गारंटी इन वचनों से श्रीजी महाराज ने अपने आश्रितों को दे दी।

भगवान भक्तों के रखवाले हैं, दुःखों को दूर करने वाले हैं–ऐसा सभी संप्रदायों में कहा जाता है। लेकिन श्रीजी महाराज सबसे पहले ऐसे अवतारी पुरुष निकले जिन्होंने भक्तों के दुःख में ऐसी अद्वितीय साझेदारी सामने से माँग ली ! मुनाफे में नहीं, घाटे में! यह उनकी भावना मात्र नहीं, प्रार्थना थी! हर कष्ट को हटा देने में वे समर्थ थे; फिर भी कष्ट माँगा! **यह था अपने आश्रितों के प्रति उनका अत्यधिक लगाव!** श्रीजी महाराज ने तो यहाँ तक भी कह दिया,

'सात अकाल भले पड़ें, लेकिन ***पंच नियम सहित मेरा आश्रय करने वाले भक्त अन्न या वस्त्र के बिना नहीं रहेंगे– विधाता के लेख भी मेरे आश्रित को आंच नहीं दे पाएंगे! उसे यदि प्रारब्ध का दुःख भोगना भी होगा, तो सूली का दुःख शूल की थोड़ी-सी वेदना में टाल दूँगा... '***

ऐसे प्रभु कितने सर्वोपरि! जगत में तो कहा जाता है–प्रारब्ध को कोई टाल नहीं सकता और प्राण व प्रकृति साथ ही जाते हैं। **मन, बुद्धि, वाणी और कल्पना की सीमाओं से परे भगवान स्वामिनारायण के ये आशिष हैं। प.पू. काकाजी, श्रीजी के अखंड धारक... वे कई बार कहते–** ***तुम्हारा सुख तुम्हें मुबारक हो, तुम्हारे दुःख मुझे दे दो।***

(3) श्रीजी महाराज ने यह भरोसा भी दिया कि **मेरे प्रगट संत को पहचान कर आसरा करने वाले हरिभक्त पर ग्रह-पनौती, भूत-प्रेत, क्षुद्र एवं मलिन देवी-**

देवता, मंत्र-तंत्र, शगुन-अपशगुन या उससे भी अधिक–काल, कर्म और माया का प्रभाव हावी नहीं होगा! कठिन से कठिन तपस्या से भी जो शक्य न हो ऐसी काल, कर्म और माया के बंधन से मुक्ति, सिर्फ आसरे में ही बख़्शिश देने वाला एवं **प्रारब्ध और प्रकृति के बंधन से छुड़वा कर विधाता के लेख पर हमेशा के लिए सेरे लगा देने वाला – ऐसा संपूर्ण स्वरूप जगत ने कभी देखा नहीं है।**

(4) **अपने आश्रित सत्संगी को स्वामिनारायण ने यह भी वरदान दिया कि अंतकाल में देह छोड़ते समय उनके आश्रितों को यम या यम के दूत नहीं, बल्कि वे स्वयं लेने आएंगे।** यह कैसा अद्भुत कि आश्रितजन को अंतकाल में भगवान या संत दिव्य दर्शन देकर, चैतन्य में शेष रह गई वासनाओं यानि कि वृत्तियों से मुक्त करके अपनी दिव्य मूर्ति में खींच कर जीव को अक्षरधाम में ले जाएंगे। यूँ, **महाराज ने इस एक ही वरदान में अपने आश्रितों की चौरासी लाख योनियाँ उड़ा दीं!**

और... यह बात ऐसी भी नहीं कि इन्होंने सिर्फ यूँ कह दी, बल्कि हक़ीक़त है। स्वामिनारायण के कई आश्रित आज भी जब शरीर छोड़ रहे होते हैं, तो कहते हैं – *महाराज लेने आए हैं।* जिसका कइयों को दर्शन भी हुआ है! और इस बारे महाराज ने कोई फर्क भी नहीं रखा। वर्ना स्वामिनारायण संप्रदाय आज तो कई अलग-अलग प्रवाहों–संस्थाओं में बँटा हुआ है; लेकिन महाराज ने ऐसा कुछ नहीं रखा कि मूल संस्था के हों–बोचासण वाले हों, उन्हें ही वे लेने आएंगे या जो प.पू. काकाजी के साथ जुड़े हैं, इन्हें ही वे लेने आएंगे या जो मुक्तजीवन बापा के आश्रित हों, इन्हें ही लेने आएंगे। हम कहीं से भी-किसी के भी द्वारा जुड़े होंगे, पर हमें महाराज लेने आएंगे। बच्चे भले अलग-अलग हो गए हों, पर सभी के पिता तो एक ही हैं! **यह वरदान और किसी जगह पर नहीं है। कहीं सुना है क्या कि कोई देवी-देवता अंतकाल पर यूँ लेने आए हों?** मक्खन में से बाल को जिस आसानी से खींच लिया जा सकता है, वैसे भगवान स्वामिनारायण देह में से हमारी जीवात्मा को खींच कर अपने धाम में ले जाते हैं और... प्रतीति कराते हैं कि अब हमारे लिए आवागमन के चक्कर नहीं रहे हैं। कइयों ने यह देखा व सुना भी हुआ है कि महाराज व संत लेने आए हुए हैं! **यह अजोड़ वरदान देकर, श्रीजी महाराज ने अपने सभी आश्रितों को निर्भय कर दिया और साथ ही अपने सर्वोपरि स्वरूप का अद्भुत परिचय कराया है।**

(5) श्रीजी महाराज को आध्यात्मिक साधना की एक नई क्षितिज खोलनी थी, क्योंकि वर्षों से चल रही चीलाचालू ज्ञानभक्ति को एक नई दिशा की ओर अग्रसर

करना था। सो–उन्होंने **समाधि प्रकरण** चला कर ऐश्वर्यों की नई परंपरा का सर्जन किया।

लोगों में भय बढ़ा कर स्वयं के आश्रितों की संख्या बढ़ाने के लिए श्रीजी महाराज ने यह ऐश्वर्य-सामर्थ्य इस्तेमाल नहीं किया, परंतु आश्रितों की निष्ठा दृढ़ बने ऐसा उन्होंने जरूर किया है। उनके चमत्कार तो भक्तों की श्रद्धा का बल और निश्चय की दृढ़ता बढ़ाते रहे। भक्तजनों का उद्धार करने की एकमात्र भावना!

जिस समाधि के लिए योगिओं ने सैकड़ों वर्षों की साधना करी, वह समाधि श्रीजी महाराज ने कोई एकल-दुक्कल को नहीं, बल्कि अनेक जीवों को सहज रूप से कराई! अष्टांगयोग की समाधि करनी या करानी कितनी अधिक दुष्कर है, वह तो इस मार्ग में जिसने साधना करी होगी उसे ही पता चलेगा। बालक हो या वृद्ध, स्त्री हो या पुरुष हो, पापी हो या पुण्यशाली, हिन्दू हो या मुसलमान–चाहे कोई भी हो, अनेकों को श्रीजी महाराज ने संकल्पमात्र से यह दुर्लभ समाधि सहज कराई।

इस समाधि प्रकरण की विशेषता यह थी कि–

श्रीजी महाराज के दर्शन से, आवाज से, नामस्मरण से

व

उनकी छड़ी के स्पर्श से

एवं

उनकी खड़ाऊ की आवाज तक सुनने से समाधि हो जाती। उनमें से कई तो कई दिनों या महीनों तक समाधि में रहते और काष्ठवत् हुई उनकी देह का ढेर लगाया जाता!

समाधि में उन्हें अपने इष्टदेव के दर्शन होते और वे इष्टदेव महाराज की मूर्ति में लीन होते भी दिखाई पड़ते।

प.पू. काकाजी के शब्दों में–

कालीदास के 'मेघदूत' जैसी यह कोई काल्पनिक कथा नहीं है;

सिर्फ 225 साल पूर्व का यह इतिहास है।

इस प्रकार की समाधि का दर्शन पहले किसी अवतार ने नहीं दर्शाया।

यह अलौकिक समाधि प्रकरण भी श्रीजी महाराज की सर्वोपरिता को साबित करता है।

(6) प्रारंभ में धर्माचार्यों ने केवल ज्ञानमार्ग प्रवर्ताया। पर वह लोकभोग्य नहीं रहा, अर्थात्–आम जनसमाज उसका लाभ नहीं उठा पाया। वह ज्ञान केवल विद्वानों-

पंडितों या थोड़े मुमुक्षुओं तक ही सीमित रहा। तब, सारे समाज को प्रभु सन्मुख करने कृष्ण भक्ति के आद्य प्रवर्तक महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने भक्तिमार्ग यानि कीर्तन भक्ति-प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रारंभ किया, पर वहाँ फिर ज्ञानमार्ग गौण ही नहीं-लुप्त ही हो गया!

लेकिन **श्रीजी महाराज ने धर्म, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के चतुर्व्यूह से उठाव लेकर सभी को भक्ति की ओर अग्रसर किया। उनकी निगाह अपने अनुयायिओं की संख्या बढ़ाने की ओर कभी नहीं रही, बल्कि ऐसे दृढ़ निष्ठावान आश्रितों की ही उन्हें कदर थी।** यह दृष्टि जगत में और किसी ने रखी है क्या? **प.पू. काकाजी** इसी बात को अलग शब्दों में दोहराते थे, ***हमें कुंभ मेले इकट्ठे नहीं करने हैं।*** फलस्वरूप भगवान स्वामिनारायण के सत्संग ने व्यक्तिधर्म से ऊपर उठ कर, पारिवारिक धर्म का स्वरूप लिया। इतना ही नहीं, **सत्संग स्वतः ही एक दिव्य परिवार-सा बन गया और सत्संग के सदस्यों में एक कौटुंबिक आत्मीयता प्रगटी!**

(7) समाज तो सड़े हुए भेजे और टूटे हुए दिलों से भरा हुआ है। ज़हरभरे रोगों में फंसे हुए संसार के-समाज के और मानव दिमाग़ के ज़हर का निदान करना एक बात है और उसका इलाज करके उसे हमेशा के लिए निरोगी बनाना दूसरी बात है। **मानव समाज के उस ज़हर को मिटाने श्रीजी महाराज ने न कोई नारे लगाए, न रैलियाँ निकालीं, न ही कोई उग्र आंदोलन या प्रतिकारात्मक आक्रमण चलाए; बल्कि समाज को ख्याल भी न पड़े, यूँ प्रेम से उसका ज़हर चूस लिया।**

सच्चाई को हर युग में विरोध का सामना करना पड़ा है। एक ओर अज्ञानी समाज ने महाप्रभु स्वामिनारायण और संत-सत्संगियों का भयंकर विरोध किया। दूसरी ओर भगवान स्वामिनारायण ने अपने संतों को स्पष्ट आज्ञा करी थी कि चाहे कितना ही विरोध हो – मारपीट हो, तब भी सह लेना। इतना ही नहीं, बल्कि विरोधियों का भला कैसे हो उसके लिए भजन करना। ऐसी कसनी में से गुज़ार कर श्रीजी महाराज ने समाज को सच्चे संतों की बख़्शिश दी। सहनशीलता व प्रेम की ताकत से समाज को संतों की साधुता का परिचय करवाया!

काठी-कोली वर्ग के अनुयायिओं तक को भी उन्होंने आक्रमक प्रतिकार में नहीं जाने दिया। जड़ जैसे काठी-कोली दरबारों के समाज को उन्होंने अपने प्रेम से सहिष्णु बनाया और **उनके जीवन में हर प्रकार से रसबस होकर उन्हें चेतनवंत**

बनाया। उनकी जड़ प्रकृति का जड़ से परिवर्तन करके भक्ति की राह पर अग्रसर करके प्रभु सन्मुख किया।

पहली बार जब वे अपने संघ के साथ 'आणंद' गए, तो आणंद का तत्कालीन समाज इन्हें स्वीकार नहीं कर पाया। सो, विरोध जताते कुछ लोग बहुत कटु वचन बोलने लगे। काठी दरबारों ने तो तुरंत अपनी तलवारें निकालीं। पर, महाराज ने उन्हें इशारे से मना कर दिया। सो, सशस्त्र काठी-दरबारों ने 'आणंद' के भरे बाजार में वह सब कुछ मूक होकर शांतचित्त से सह लिया! महाराज 'माणकी' घोड़ी पर विराजमान थे। उनकी पाघ के तुर्रे को छूता हुआ एक पत्थर निकल गया। उनके अंगरक्षक भगुजी से यह सहा नहीं गया। सो, वह अपनी कमर पर लटकती तलवार को म्यान से बाहर निकालने लगा। महाराज तुरंत ही बोल उठे– *'भगुजी, तलवार नहीं निकालना। यहाँ से ही शोभायात्रा को हम वापिस ले लें।'* शोभायात्रा वापिस मुड़ी और... 'आणंद' व 'करमसद' के बीच सभा करके महाराज ने कहा– *'आज तो भारी डंका बज गया, विजय हो गई।'* तमतमाए हुए काठी दरबार बीच में ही बोल पड़े– *'महाराज! विजय कहाँ हुई? आपने हमें रोक लिया, वर्ना तो आज कई कितनों को सुला देते।'* श्रीजी महाराज बोले–

'पाँच-पचास उनके तो जरूर मरते, पर पाँच-दस हमारे भी घायल होते। पर... फिलहाल भीतर में जो ठंडक महसूस कर रहे हो, वो शांति अंतर में नहीं रहती। अब देखना–सारा चरोत्तर सत्संगी हो जाएगा।'

महाराज की क्षमावृत्ति, धैर्य और नम्रता भरे व्यवहार से बाद में कइयों को खूब गुण आया और कितनों ने तो कंठी पहनी!

यूँ, **भगवान स्वामिनारायण ने असुरों का नाश न करके, उनका आसुरीभाव टाला व उन्हें अपने करीब करके सत्संगी भी बनाया! श्रीजी महाराज की यह निजी और सर्वोपरि विशेषता है।**

वाकई, भगवान स्वामिनारायण ऐसे पहले अवतार हैं, जिन्होंने बिना कोई शस्त्र उठाए, संबंध में आए हुए के अंतःकरण को बदला.... जोबनपगी जैसे खुंखार डाकू-लुटेरों के हाथ में माला पकड़वाई! 'गामडी' गांव की एक बुजुर्ग औरत ने सुना था कि भगवान स्वामिनारायण 'गधे को गाय' बनाते हैं। पर, इस कथन का तात्पर्य वह समझ नहीं पाती थी। संजोगवश जोबनपगी उस बुढ़िया को अचानक मिला। बुढ़िया ने उसे सहज ही पूछा – *ये स्वामिनारायण भगवान 'गधे को गाय' कैसे बनाते होंगे?* जोबनपगी ने मूछों पर ताव देते हुए हँस कर जवाब दिया – *'माँजी! भगवान स्वामिनारायण*

ने जिस गधे को गाय बनाया है, आप उसी से बात कर रही हो। मेरा नाम जोबन-वड़ताला है। 'स्वामिनारायण' यदि न मिले होते, तो इतना पूछते ही आज तू परलोक सिधार गई होती। मुझ जैसे लुटेरे डाकू के हाथ में माला पकड़वा कर, एक साधु की भाँति जीवन जीता कर दें-वो तो एक महाप्रभु स्वामिनारायण और उनके निर्मल साधु ही कर सकते हैं।

यूँ, श्रीजी महाराज ने मन के अशुद्ध भावों को बदला, छोटे-बड़े कर्म बदले, जीव के स्वभाव को बदला और **प्रकृति के परिवर्तन का यह कार्य अखंड चलता रहे, उसकी व्यवस्था भी ऐसी कर दी कि उसमें कोई खोट न रहे।** वह क्या? तो–ब्रह्मस्वरूप संतों की परंपरा अखंडित रखी।

और... **इस हेतु ऐसे संत के प्रति अखंड सद्भाव रख कर अनन्यभाव से दृढ़ आसरा कर लेने के सिवा, इन्होंने हम से कोई अपेक्षा नहीं रखी है।**

(8) **अब तक के अवतारी पुरुषों ने भिन्न-भिन्न तरीके की कोई न कोई साधन प्रणालिका रखी। साधन मात्र का अंत लाए श्रीजी महाराज! केवल अनन्य आसरे में उन्होंने सभी को कल्याण का वचन दिया।** सभी के साथ सभी की रीति से वे रसबस हुए। काठियों को सच्चे सत्संगी बनाने के लिए, उन्होंने उनकी पोशाक और रीति-रिवाज भी अपनाए एवं सभी को अपनापन देकर खूब सखाभाव से वे वर्ते! तभी तो बापू एभलखाचर उनके सामने खुल कर कह पाए कि–*'महाराज! भले ही आप भगवान कहलाते हो और अंतिम जन्म कराने का वचन देते हो, लेकिन हम जैसे घोर पापियों का कल्याण तो कैसे होगा ?'* महाराज ने पूछा–*'तुमसे हमारा संबंध है और तुम यदि हम पर खूब प्रसन्न हो जाओ, तो दो-तीन गांव हमें बख़्शिश में दे दोगे या नहीं ?'* बापू जोश में आ गए और बोले–*'अरे! मेरा सारा देश आपके चरणों में रख देता हूँ।'* श्रीजी महाराज प्रत्युत्तर में बोले–

'तो फिर, हम अक्षरधाम के अधिपति पुरुषोत्तमनारायण हैं; सो जिस पर हम प्रसन्न हो जाएं, उसे अक्षरधाम बख़्शिश दे देते हैं। ***हम हमारे बलबूते पर मोक्ष करते हैं। आप साधन करो या न करो, मैं मेरे बल से तुम्हें अक्षरधाम में ले जाऊँगा।'***

यूँ, ऐसे सामान्य पाँच नियम-पालन में ही, बिना साधन के मोक्ष की प्रतीति करवा देने वाले प्रभु को हम पूर्णावतार के अलावा और क्या कहें ?

बिना साधन के एकमात्र आसरे से आत्यंतिक कल्याण बख़्शिश देने की बात श्रीजी महाराज की सर्वोपरिता सिद्ध करती है। पर, जो-जो–

इनके संतों या सत्संगियों के संबंध में आए हों,
उन्हें जलपान कराएं, भोजन दें –
उन सब के कल्याण की भी जो गारंटी उन्होंने ली, उसे कल्याण का कौन-सा मार्ग कहा जाए ? ऐसे संबंधयोग को तो 'लिफ्ट' ही मानना पड़े ! सरल, शीघ्र और निश्चित्! ऐसी अतिउदार भावना किसी और अवतार ने नहीं रखी।

(9) सद्. रामानंदस्वामी के अंतर्धान होने के बाद, भगवान स्वामिनारायण ने जीवंत एवं खुला **'स्वामिनारायण' महामंत्र** दिया। सद्. रामानंदस्वामी का समस्त अनुयायीगण 'श्री कृष्ण' का भजन करता था। श्रीजी महाराज की इस एक ही आज्ञा से बिना कोई तर्क-वितर्क करे, वे सभी निःसंशयरूप से 'स्वामिनारायण' मंत्र रटने लगे। यह कोई सामान्य बात नहीं है, बल्कि आध्यात्मिक इतिहास में घटी अपूर्व घटना है।

पहले के किसी अवतार ने यूँ अपने ही 'नाम' से भजन करने का स्पष्ट आदेश नहीं दिया है; न ही अनुयायिओं ने भी अपना गुरुमंत्र छोड़ कर यूँ नया मंत्र शिरोमान्य किया है। यह घटना ही उनकी सर्वोपरिता सिद्ध कर देती है।

इससे भी अधिक–कान में मंत्र फूँकने की एक प्रथा-रिवाज है। पर, भगवान स्वामिनारायण ने सभी के लिए इसे खुला रख कर अत्यधिक विशालता का परिचय दिया कि **जाने-अनजाने, परिचित-अपरिचित, निष्ठा वाला या केवल सद्भावना वाला भी, अरे ! आजमाने के ढंग से भी इस मंत्र को रटेगा, तो उसकी पुकार प्रभु अवश्य सुनेंगे ही।**

दूसरी बात–हम राम-राम, राधे-राधे, कृष्ण-कृष्ण या स्वामिनारायण-स्वामिनारायण या कोई भी मंत्र जपेंगे, तो एक मंत्र का फल एक। पर, **वही मंत्र इष्टदेव को प्रगटाई मानवस्वरूप विभूति की स्मृति करके-उसके वचन से रटेंगे, तो एक मंत्र का फल** कई करोड़ गुणा! क्योंकि–'नाम' में 'रूप' और 'निश्चय' सम्मिलित हो जाता है! ये मूर्तिमान जो प्रगट हैं, वे भगवान का स्वरूप हैं–ऐसा अनन्यभाव-विश्वास यहाँ प्रगट होता है!

यह एक करामत है–जो कि 'स्वामिनारायण' के यहाँ ही है। यूँ, यह मंत्र अलादीन के चिराग के समान है। जैसे-जैसे घिसेंगे, वैसे-वैसे हमारी समस्याएं-मुश्किलें हल होती जाएंगी... यानि–संत की स्मृति करके चलते-फिरते, उठते-बैठते, छोटी-बड़ी हर क्रिया करते हुए जितना मंत्रजाप किया करेंगे, उतना हमें पारलौकिक अनुभवों की-आश्चर्यों की परंपरा का निरंतर दर्शन होता जाएगा।

(10) **भगवान स्वामिनारायण ने अध्यात्म-ज्ञान को इतनी सादी-सरल भाषा में परोसा कि गाँव के सामान्य लोग तक आसानी से समझ पाएं। 'वचनामृत'** ऐसी ही सनातन भारतीय तत्त्वज्ञान की निचोड़रूप पुस्तक है। संस्कृत भाषा में लिखे गए शास्त्रों का बारीक तत्त्वज्ञान सिर्फ विद्वद्भोग्य ही रहा है। आम समाज को जो ज्ञान समझ में ही न आया हो, उसे भला आचरण में कैसे ला पाएंगे? वह तो सिर्फ विद्वानों की चर्चा और भाष्य का विषय बन कर ही रहा! जबकि **स्वामिनारायण भगवान के वचनामृत की भाषा इतनी सादी व सरल है कि पढ़े-लिखे विद्वान हों या देहाती किसान–सभी को समझ आए।** यूँ, उनका यह ज्ञान सामान्य जन समाज के लिए भी आचरणोपयोगी बना है। तत्त्वज्ञान के कई अटपटे विषय–जिन्हें लिखने में ढेर पन्ने भी कम पड़ें, वे विषय सभी के गले उतरे, यूँ बिल्कुल सादी भाषा में, एक-दो वाक्यों में ही प्रभु ने स्पष्ट किया है! जैसे कि–'माया' का स्वरूप समझाने के लिए कई शास्त्र लिखे गए, पर भगवान स्वामिनारायण ने एक ही वाक्य में माया का स्वरूप बताया, ***भजन करते हुए बीच में जो बाधारूप बने वो 'माया'!*** जिन्हें स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ता हो, वे धुंधला-धुंधला देख कर एक अंदाजे से ही खाली इधर-उधर का वर्णन करते रहते हैं... जबकि महाराज को एक स्पष्ट **दर्शन था, सो सरल भाषा में स्पष्ट समझा दिया। और... सभी शास्त्रों ने 'माया' को दुःखदायी बताया, जबकि भगवान स्वामिनारायण पहले ऐसे निकले, जिन्होंने 'माया' को सुखदायी नहीं; बल्कि परम सुखदायी कहा! 'ज्ञान' से परे का जिसे संपूर्ण व बिल्कुल स्पष्ट, सुरेख और मूर्तिमान दर्शन हो वही यह कह सकता है न?**

सभी आध्यात्मिक ग्रंथों में **'वचनामृत'** का स्थान विशिष्ट ही रहेगा। **किसी भी धर्मसंस्थापक का उपदेश उनकी हयाती में प्रकाशित नहीं हुआ; जबकि–भगवान स्वामिनारायण के उपदेश का तत्कालीन सद्गुरुओं ने 'वचनामृत' ग्रंथ के रूप में संकलन करके गांव 'लोया' में उनसे प्रमाणित भी करवाया है। विश्वधर्म के ग्रंथों में यह भी एक अनूठी घटना है!**

(11) सामाजिक जीवन में व्यावहारिक शुद्धि और सांसारिक मिठास के साथ-साथ अखंड निश्चिंतता के लिए भगवान स्वामिनारायण ने सुदर्शनचक्र रूपी एक छोटा-सा ग्रंथ **'शिक्षापत्री'** दिया। करीब 200 साल पहले लिखी सर्वजीवहितावह इस 'शिक्षापत्री' के नियमों के अनुसार आज के युग में यदि कोई भी जीव वर्तने लग पड़े, तो वह दुःखी नहीं होगा। निर्मल पवित्र संत को आगे रख कर 'शिक्षापत्री' के अनुसार व्यवहार करने वाले आश्रित की रक्षा में वे अखंड रहेंगे, ऐसा भगवान स्वामिनारायण

का वरदान है। साथ ही–**बदलते युगधर्म एवं संजोग को ध्यान में रखते हुए आचार, व्यवहार और प्रायश्चित् के इन नियमों में प्रगट सत्पुरुष की आज्ञा से बदलाव का आदेश देकर, श्रीजी महाराज ने अपनी फ्लेक्सीबिलीटी एवं दूरदर्शिता का परिचय भी दिया है।**

(12) यह भी कितना सत्य है कि समर्थ पुरुष त्रिकाल में किसी का भी खंडन नहीं करता। जो खंडन करता है, वह उसकी अपूर्णता है–दौर्बल्य है। समर्थ पुरुष दूसरों की महिमा ही गाए....

स्वामिनारायण के मंदिर और शास्त्र देख कर सहज ही ख्याल आ जाए कि प्रभु का उठाव बिल्कुल सर्वदेशीय है। उन्होंने मंदिरों में नरनारायण देव, लक्ष्मीनारायण देव, राधाकृष्ण देव भी स्थापित किए। गणेशजी और हनुमानजी स्थापित करके मंगलकारी भावना और पवित्रता को भी जीवंत रखा। शिक्षापत्री में भी पंचदेव को सम्मानित किया... यूँ, उन्होंने किसी की निंदा नहीं करी, बल्कि यही उपदेश दिया कि आदर सभी का करो। **सभी संप्रदायों के सारतत्त्वों को अपने उपदेशों में समाविष्ट करके, सर्वदेशीय बातों से समाज के साथ सुसंवादित रह कर, वे सभी के दिल में बस गए और सभी से 'स्वामिनारायण' का भजन करवाया!** जैन या वैष्णव, शैव या शाक्त, पारसी या मुसलमान और जड़ एवं नास्तिक सभी को श्रीजी महाराज में श्रद्धा हुई। महाराज के संतों में प्रेमलक्षणा भक्ति के सम्राट सद्. प्रेमानंदस्वामी मुसलमान थे, सूरत के अरदेशर कोतवाल पारसी थे। महाराज के निजी भक्त हरजी ठक्कर खोजा मुसलमान थे। सभी को उन्हीं के ढंग से तप, ध्यान, भक्ति, सेवा करवा कर या उन्हें ऐसी महिमा में झबो कर सभी का सरीखा विकास किया।

आध्यात्मिक इतिहास के पन्ने पर कहीं ऐसी बात नज़र नहीं आई है, पर **इसी में भगवान स्वामिनारायण की सर्वोपरिता निहित है।** प.पू. काकाजी भी तो अकसर कहते कि राम को मानो, कृष्ण को मानो, माता को मानो, महादेव को मानो; भले ही किसी देवी-देवता को मानो, लेकिन **तुम्हारे वो इष्टदेव मानवस्वरूप में प्रगट होने चाहिएँ, जैसे अर्जुन के सारथी 'कृष्ण' मानवस्वरूप में मौजूद थे। तभी तो–उसके कुरुक्षेत्र का अंत आया!** और **इस तरीके से स्वामिनारायण धर्म सनातन ही है जो कि प्रगट उपासना की धारणा सहित है और आज 228 साल के बाद भी जीवंत है–हरियाला है।**

(13) श्रीजी महाराज ने स्त्री और धन के त्यागी साधुओं, सांख्ययोगी बहनों, युवकों (पार्षदों) एवं एकांतिक गृहस्थों सहित संप्रदाय का एक क्रांतिकारी ढांचा रचा। गृही और त्यागी का सुंदर समन्वय भगवान स्वामिनारायण ने किया। एक ओर **गृहस्थों**

को देख कर संतों के दिल में अपने आत्मीय स्वजन आए हों, ऐसे अपनेपन का एहसास हो; तो दूसरी ओर संतों के दर्शन से गृहस्थों को अपने प्रभु के दर्शन की प्रतीति हो, ऐसी व्यवस्था इन्होंने करी।

संन्यासियों के कई मठ एवं आश्रम थे; पर, वे संन्यासी जनसमाज के जीवन में ओतप्रोत नहीं हो सके। और... गृहस्थों के जीवन में यूँ रसबस हुए बिना, संतों के दिए उपदेश का कोई असर उनके जीवन में हुआ नहीं। कई साधु-संन्यासी गृहस्थों के जीवन में ओतप्रोत हुए भी, तो वहाँ वे स्वयं संसार की दलदल में फंस गए! सो, गृहस्थों में यही भावना पनपी कि अध्यात्म-ज्ञान अलग चीज है और हमारा संसार-व्यवहार अलग बात है। यूँ, साधुसमाज संसारियों से अलग ही रहा; जिससे कि साधु जीवन की निर्मलता-पवित्रता एवं प्रभुनिष्ठा का बल संसारियों में आ नहीं पाया। पर, यह ख्याल ही नहीं था कि ऐसे सच्चे संतों को हमारे जीवन के केन्द्र में रख कर जीने से ही तो हमारा संसार अमरत्व और अमृतत्त्व को पाएगा।

भगवान स्वामिनारायण ने गांवों व शहरों की बस्तियों के बीचोंबीच ही शिखरबद्ध मंदिरों का निर्माण किया और उनके संतों को स्त्री एवं धन के त्याग के कड़े नियम देकर उन मंदिरों में रखा। सांख्ययोगी बहनों के मंदिर भी अलग बनवाए। कैसे विचक्षण प्रभु? स्त्री और धन के त्यागी साधु बना कर बस्ती के बीच जंगल में मानो मंगल सर्जा! फलस्वरूप सामान्य जनसमाज को साधुओं के उपदेश का लाभ मिला, उनका जीवन बदला और संतों की सेरेछाया में एक ठंडक मिली–निश्चिंतता मिली; तो दूसरी ओर धर्म के कड़े नियमों के अनुशासन से संतों की निर्मलता-पवित्रता भी बनी रही!

भयंकर कलियुग में–बस्ती में नियम-धर्म के अनुशासन द्वारा हिमालय की एकांत साधना को संभव करने वाले भगवान स्वामिनारायण की सर्वोपरिता मान्य करनी ही रही!

स्त्री और धन के सच्चे त्यागी साधु सबसे पहले भगवान स्वामिनारायण ने ही दिए। मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी के समय का एक प्रसंग इस बात का सबूत है। जूनागढ़ का दीवान उत्तर भारत की यात्रा पर जाते हुए दर्शन करने मंदिर आया... उसने पू. स्वामिजी के पांव छू कर भक्तिभावपूर्वक पूछा–

स्वामी! भ्रमणयात्रा पर जा रहा हूँ, आपके लिए क्या लेता आऊँ?

पू. स्वामिजी ने हँस कर कहा–

हम तो साधु ठहरे! हमें क्या चाहिए? फिर भी भ्रमण के लिए निकले हो, तो–तीर्थस्थानों में कई साधु होंगे। हमारे लिए स्त्री और धन के त्यागी ऐसे दो अच्छे साधु लेते आना।

दीवान विचक्षण एवं अक्लमंद था। सभी तीर्थस्थानों में वह ऐसे साधु ढूंढ़ता रहा। पर, पू. स्वामिजी के कहे मुताबिक ऐसे स्त्री और धन के त्यागी साधु उसे कहीं नज़र नहीं आए। दीवान जब जूनागढ़ वापिस लौटा और मंदिर आया तब इतना ही कह पाया– ***'स्वामी! स्त्री और धन के सच्चे त्यागी साधु तो सिर्फ आपके पास ही हैं।'*** भगवान स्वामिनारायण द्वारा दिए नियम-धर्म की सर्वोपरिता का यह ज्वलंत उदाहरण है।

यूँ, **भगवान स्वामिनारायण के नियम भी सर्वोपरि! अक्षरधाम जैसा कोई धाम नहीं, महाराज जैसा कोई भगवान नहीं और उनके नियमों जैसे कहीं नियम नहीं!**

सत्संग में भी स्त्री-पुरुष मर्यादा रखवा कर, भगवान स्वामिनारायण ने तत्कालीन समाज में एक नया आश्चर्य जरूर खड़ा कर दिया था। पर, अधिक आश्चर्य की बात यह है कि 228 वर्ष के पश्चात् आज भी वह प्रणालिका चालू है! **भयंकर कलियुग में ऐसी शुद्ध प्रणालिका श्रीजी महाराज के साहसिक और दूरदर्शी होने का स्पष्ट परिचय करवाती है।** इससे **श्रीजी महाराज ने स्त्री वर्ग की उपेक्षा, तिरस्कार या अपमान नहीं किया। बल्कि उनका विकास रुक न जाए, ऐसी एक अलग-सी व्यवस्था करी है–प्रणाली रखी है।** इस हेतु 'शिक्षापत्री' में हर एक के यानि–बहनों, गृहस्थों, साधुओं व आचार्य के नियम भी स्पष्ट किए। और... इससे जो ढांचा तैयार हुआ, उसके मुताबिक इसी मर्यादा में सभी अनुयायी रहने लगे हैं, जहाँ एक की राह में दूसरा बाधारूप नहीं बनता। इतना ही नहीं, बल्कि सहायक बनता है।

इस तरह भारत की धर्मपरंपराओं को जीवंत रखने वाले सभी में 'स्वामिनारायण' अद्वितीय हैं। **इनके जैसी विशुद्धि किसी ने बनाए रखी नहीं है।**

'महाजनों येन गतः स पन्थाः'–इस सिद्धांत का भी इन्होंने आग्रह नहीं रखा, पर **जहाँ-जहाँ त्रुटियाँ नज़र आईं–जहाँ-जहाँ जरूरत लगी, वहाँ बदलाव लाए–परिवर्तन करवाए।** संप्रदाय का इतिहास गवाह है कि–**महाराज की एक ही आवाज पर वर्षों पुरानी रूढ़िगत वर्णाश्रम की मान्यताओं का त्याग करके, वैष्णवी दीक्षा को रुखसत करके एक ही रात में 500 महारथी सिद्धों ने गाँव 'कालवाणी' में परमहंस की दीक्षा ग्रहण करी!** इतना ही नहीं, महाराज द्वारा प्रवताई 108 कठिन कसौटियों से वे हँसते-हँसते गुज़रे। ये परमहंस कोई लल्लु-पंगु, गरीब, अज्ञानी, भोले, निर्बल या असमर्थ नहीं थे, बल्कि लौकिक व पारलौकिक सामर्थ्य को पाई विभूतियाँ थीं। मुमुक्षुता, विद्वत्ता, बुद्धिमता से समृद्ध व विविध कलाकौशल्य के साथ-साथ **कई तो विविध सिद्धियों के मालिक व ऐश्वर्यसंपन्न**

थे! जगत के तो वे भगवान होकर पूजे जाते। परंतु , ऐसे समर्थ परमहंसों को अपने असाधारण सामर्थ्य और दिव्य प्रेम से वश करके अपनी उँगली के इशारे पर कठपुतली की तरह नचाने वाले श्रीजी महाराज की यह कैसी अनोखी ताकत होगी कि इन परमहंसों ने उनके चरणों में समर्पित होकर दास बनने में जीवन की सच्ची सार्थकता मानी! **ऐसे सिद्धों के भी स्वामी श्रीजी महाराज को 'परमेश्वर' ही कहा जाए न!**

और.... यह भी एक कौतुक ही कहा जाए कि–भगवान स्वामिनारायण ने अपनी हयाती में ही वड़ताल मंदिर में **स्वयं की मूर्ति की 'हरिकृष्ण महाराज' के नाम से प्राणप्रतिष्ठा करके सर्वोपरि उपासना की नींव रखी। स्वयं की मूर्ति का पूजन किया-करवाया और आरती उतारी व उतरवाई** एवं वह मूर्ति सब आश्रितों की उपास्य मूर्ति है, ऐसा आदेश भी दिया।

जगत के धर्म के इतिहास में अभी तक ऐसा कभी नहीं हुआ। अपनी कीर्ति व महत्ता के लिए धन खर्च करके कोई अपना पुतला बनवा तो दे, पर उसमें-उस मूर्ति के प्रति श्रद्धा, भक्ति, पूज्यभाव कैसे रखवा पाएगा? जबकि यहाँ तो – पाँच-पचास नहीं, बल्कि लाखों की तादाद में मनुष्य 'स्वामिनारायण' का 'भगवान' के रूप में भजन करने लगे! वे दर्शन भी कैसे विरल होंगे कि खुद की मूर्ति के सामने खड़े रह कर खुद आरती उतारे! **जो समर्थ होगा, वही ऐसा कर सकता है न?**

देवों का ऐश्वर्य लेकर अवतरित होना एक बात है, लेकिन उस ऐश्वर्य की खुद घोषणा करके प्रतिष्ठा करनी वह अलग बात है। युगधर्म प्रवर्तक विभूतियाँ विविध स्वरूप लेकर कार्यकारण भाव से आती हैं और अपना कार्य संपन्न करके लौट जाती हैं। इनके आने से बड़ी-बड़ी क्रांतियाँ भी होती हैं, पर इससे इन्हें 'अवतार' नहीं कह पाएंगे। अवतार तो स्वयंप्रकाशित-स्वयंसिद्ध होते हैं।

पहले जो-जो अवतार पुरुष हुए, उनके शरीर छोड़ने के कई वर्षों बाद उनके मंदिर बने, उनकी मूर्तियाँ स्थापित हुईं, जबकि श्रीजी महाराज ने अपनी हाज़िरी में ही ऐसे छः बड़े शिखरबद्ध मंदिरों की रचना करी।

शास्त्र बताते हैं कि पहले जो-जो अवतार हुए, उन्हें तत्कालीन समाज में साक्षात् भगवान मान कर जीने वाले-उनका भजन करने वाले बहुत कम लोग थे। भगवान श्री राम को जंगल में भेजा... सिर्फ बंदरों ने पहचान कर सहयोग दिया। भगवान श्री कृष्ण को चरवाहा व कपटी-प्रपंची ठहराया.. उन्हें भगवान मान कर भजन करने वाली गोपियाँ और उद्धवजी जैसे बहुत कम लोग थे। साथ में रहे यादव भी तो भगवान श्री कृष्ण को पहचान नहीं पाए! जीसस को क्रॉस पर चढ़ाया... जबकि **भगवान**

स्वामिनारायण को लाखों लोगों ने उनकी हयाती में ही ‘भगवान’ के रूप में स्वीकार करके उनका भजन किया!

अब, 1967 में प.पू. काकाजी द्वारा इस बारे करी कथावार्ता पढ़ें –

‘कोई भी तत्त्वज्ञान, सिद्धांत, रहस्य या आध्यात्मिक भूमिका को सर्वोपरि मानने के लिए मुख्यतया तीन सबूत जगत की महान विभूतियों ने मान्य करे हैं।

(क) परम सत्यस्वरूपों के रूप में पृथ्वी पर कल्याणकारी तत्त्वों की मौजूदगी स्पष्ट रूप से दर्शायी हुई होनी चाहिए। ऐसी सर्वोत्तम-श्रेष्ठ-सर्वोपरि उपासना, ब्रह्म और परब्रह्म के प्रगटपन के रूप में मूर्त करके धाम, धामी और मुक्तों द्वारा प्रगट रह कर महाराज ने सिद्ध कर दिखाई। कारण और महाकारण के भाव टाल कर एकांतिक धर्म सिद्ध कराया। वैसे यह ज्ञान, अवतार कोटि तक भी एक या दूसरे स्वरूप में अलग-अलग प्रकार से प्रगट हुआ दिखाई देता है, लेकिन आसरे में ही परम कल्याण–ऐसी परम सिद्धि इतनी सुलभ और इतनी सरलता से मानव इतिहास में अब तक स्पष्ट रूप से उभरी हुई कहीं दिखाई नहीं पड़ती। श्रीजी महाराज ने 500 परमहंसों द्वारा और मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामी तथा अनादि महामुक्त गोपाळानंदस्वामी जैसों द्वारा परम कल्याण के तत्त्वों की स्पष्ट रूप से पहचान करा दी। भागवत धर्म–एकांतिक धर्म–ब्रह्मरूप होने का ऐसा सरल मार्ग हमेशा के लिए खुल्ला कर दिया।

(ख) सनातन तत्त्वों की यह सर्वोपरि युगल उपासना उनके शरीर छोड़ने तक ही न रह कर, बाद में भी वैसा ही कल्याण-जीवन परिवर्तन और एकांतिक धर्म की सिद्धि-जीतेजी अक्षरधाम की प्राप्ति अखंडित रहे, ऐसी अनमोल बख़्शिश गुणातीत स्वरूप या उसके तद्‌वद्‌भाव को पाए **ब्रह्मस्वरूप एकांतिक सत्पुरुषों द्वारा कायम रखी** और गुरुपरंपरा के रूप में पू. भगतजी महाराज, पू. जागास्वामी तथा पू. कृष्णजी अदा और फिलहाल भी ब्र.स्व. गुरुवर्य शास्त्रीजी महाराज के अंतर्धान होने के बाद प.पू.प्र.ब्र.स्व. स्वामिश्री योगीजी महाराज उन छः स्वरूपों को अखंड धार कर परात्पर पुरुषोत्तमनारायण का–अक्षरधाम का सुख सभी को दे रहे हैं। यहाँ कोई साधन या भेदभाव जरूरी नहीं गिना है। सिर्फ उनके प्रति सद्‌भाव रख कर, वे जो कहें वह करने लग पड़ने वाले को प्राप्ति सुगम है और निर्दोषबुद्धि वाले भक्तों को एकांतिक धर्म भी इतना ही सुगम है। केवल शुद्धभाव से उनका पसंदीदा कर लेने की अभीप्सा के साथ लग पड़ने की तमन्ना रखनी पड़े।

(ग) सर्वोपरि प्रगटपन और कल्याण रीति वैसी की वैसी ही कायम रखने के अलावा श्रीजी महाराज ने गँवारों, तमोगुणियों और रजोगुणियों के लिए भी ऐसी ही

ब्राह्मीस्थिति के लिए सर्वोपयोगिता-सरलता और सुगमता प्रतिपादित करी है। **स्वयं का ही श्रेय कर लेने की लगन से भले कैसा ही कामी, क्रोधी, लोभी, लम्फट जैसा जीव भी प्रगट स्वरूप के साथ शुद्धभाव से संबंध कर ले, तो वह भी वचनामृत सारंगपुर-9 और मध्य-7 के मुताबिक जीतेजी ही ब्रह्मस्वरूप हो जाए।** वेद, उपनिषद्, गीता और भागवत के परम रहस्य वेदकाल के दौरान या बाद में भी सिर्फ विद्वानों के लिए ही सीमित थे; जबकि स्वामिनारायण भगवान ने सभी मुमुक्षुओं के लिए बिना किसी भेदभाव के वे खुल्ले कर दिए और प्रगट स्वरूप के आसरे में रह कर उनकी मर्जी में वर्तने वाले हर एक के लिए जीतेजी ही परम कल्याण की प्रतीति करवा दी। **यूँ, लक्षावधि मुमुक्षुओं के लिए तत्त्वज्ञान के रहस्य समझ कर जीवन मुक्तदशा पानी सुगम बनाई।**

इस प्रकार

सर्वोत्तम युगल उपासना का तत्त्वज्ञान,
सनातन तत्त्वों का ऐसा ही अखंडित प्रगटपन

और

वासना का क्षय व प्रकृति का आमूल परिवर्तन करके
जीतेजी ही भीतर का-सूक्ष्म जगत टाल देने की राह
हर एक के लिए आसान बना दी।
यही भगवान स्वामिनारायण की सर्वोपरिता है।'

धन्य है भारत की धरती जिसकी गोद में खेलने अक्षरधाम से सर्व अवतारों के अवतारी पूर्ण पुरुषोत्तम **'भगवान श्री स्वामिनारायण'** स्वयं आए! हम सब के भाग्य का तो पार ही नहीं कि इसी धरती पर हमारा जन्म हुआ और भगवान स्वामिनारायण के अखंड धारक गुणातीत संतों का जोग भी मिल गया। जीवन की हर सॅकण्ड इन्हें 'धन्यवाद-धन्यवाद' करने के अलावा और कुछ करने जैसा नहीं है। मानवस्वरूप में प्रभु को अखंड धार कर जीने वाले प्रगट संत का दर्शन–वही साक्षात् भगवान का दर्शन, उस संत की पूजा–वही साक्षात् भगवान की पूजा–उस संत की सेवा–वही साक्षात् भगवान की सेवा–यह प्रतीति कराने का संपूर्ण श्रेय श्रीजी महाराज को ही जाता है।

प्रगट संत में जो तेज है, वह भगवान का ही तेज है। उसके द्वारा भगवान ही बोलते हैं। उस संत से भगवान एक सॅकण्ड भी अलग नहीं रहते।

ब्रह्मस्वरूप संत में परब्रह्म का अखंड निवास है, यह 'प्रगट' का रहस्य स्वामिनारायण भगवान ने दिया! यह मूल रहस्य जहाँ एक ओर महाराज की सर्वोपरिता

को सिद्ध करता है, तो दूसरी ओर उनके संबंध से मानव जीवन के अंतिम लक्ष्य को साकार भी करता है। सच, मानवस्वरूप में प्रभु की हमें अनमोल प्राप्ति हुई है। गरीब रह कर, हमें इस भव्य प्राप्ति को संभालना है! गरीब यानि आर्थिक रूप से कंगाल हों – वैसे गरीब नहीं, बल्कि भीतर से रंक रह कर!

तो, आइए **'सर्वोपरि स्वामिनारायण'** की सत्ता को पल-पल स्वीकार करके जीवन धन्य करें!

भगवान स्वामिनारायण ने पृथ्वी पर पधार कर पाँच सौ परमहंसों द्वारा आत्यंतिकी कल्याण का मार्ग सभी के लिए, सदा काल के लिए खुल्ला रख दिया! मुमुक्षुओं को जीतेजी अक्षरधाम का दिव्य सुख और एकांतिकी स्थिति आसानी से सिद्ध हो, इस हेतु मानवजाति को अनमोल बख़्शिश के रूप में गुणातीत स्वरूप द्वारा भगवान के अखंडित प्रगटीकरण का अचल सिद्धांत भी स्थापित किया, जो युगल उपासना के रूप में – अक्षरपुरुषोत्तम की सनातन प्रगट की निष्ठा के रूप में ब्रह्मस्वरूप गुरुवर्य शास्त्रीजी महाराज और गुणातीत ज्ञान के अन्य महारथिओं द्वारा हमेशा के लिए मूर्तिमान हुआ।

अब, प्रगट के संबंध वाले – धाम, धामी और मुक्तों की निष्ठा वाले सभी के लिए प्रगट ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज, उनके सिर्फ असाधारण अनुग्रह से ही मौज रूप में अक्षरधाम अर्पण कर रहे हैं। करोड़ों साधन करने के बावजूद भी ऋषि - मुनियों को या परमहंसों को भी दुर्लभ, लेकिन वर्तमान काल में गुणातीत -साकारब्रह्म के सनातन स्वरूप के प्रादुर्भाव की फलश्रुति रूप में मानो, गृही-त्यागी, पुराने-नए, शिक्षित-अनपढ़, संबंध में आते सभी के लिए, वह सनातन गुणातीतभाव प्रगटा कर, परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण का ही अपरंपार सुख, शांति और आनंद अर्पण कर रहे हैं।

तो, शरद्पूर्णिमा के इस मंगलकारी पवित्र दिन पर हमारे देहभाव और जीवभाव या स्वभाव बिल्कुल टल जाएं और हम अपने मन को गुरुचरणों में निमग्न रख कर, एकांतिकभाव का या परमपद का या ब्राह्मीस्थिति का – काल, कर्म और माया के सभी डर से रहित, निर्भय और निष्कामभावना वाला अक्षरधाम का ही दिव्य सुख हमेशा के लिए भोगें।

यूँ, गुणातीत के साथ ऐसा अभेदभाव और महाराज के साथ स्वामीसेवकभाव अखंड रख कर सदा सुखी होना है। अन्य को भी आसानी से वह प्राप्त होता जाए ऐसी प्रगट 'स्वामिश्रीजी' के चरणों में नम्र प्रार्थना।

– प.पू. काकाजी महाराज, 1968

योगीगीता

[वर्षों पूर्व – शुक्रवार ता. 28-3-1941 के दिन गुरुहरि स्वामिश्री योगीजी महाराज ने एक पत्र लिखा था। जिसका उद्देश्य था – जीव मोक्ष कैसे पाए और ब्रह्मरूप कैसे हो सकता है – यह श्रेयार्थी साधकों को स्पष्ट करना।

हम अपने जीवन में अगर एक नया मोड़ लाना चाहते हैं, शांति पाना चाहते हैं, अपना जीवभाव छोड़ कर, ब्रह्मभाव की ओर गति करना चाहते हैं, तो हमारे आचरण में क्या परिवर्तन लाना चाहिए – इस बात का पूरा विवरण योगीजी महाराज ने यहाँ सप्तपदी - सात कदम - सात सोपान - सात वार्ता द्वारा स्पष्ट किया है। ***प.पू. काकाजी ने इसे 'योगीगीता' के रूप में नवाज़ा था*** *और उसी का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत है, जो 1981 में प्रकाशित करवाया था। अब यहाँ, पुनः प्रस्तुत कर रहे हैं। इसका नित्य पाठ करेंगे और जीवन में उतारेंगे... तो, भगवत्स्वरूप संत की प्रसन्नता से हम ब्रह्मरूप हो जाएंगे।]*

28-3-41, शुक्रवार

श्रीजी स्वामी सत्य हैं

वचनामृत में से पाँच मुख्य बातें –

1. करना – संतसमागम (मन, कर्म, वचन से)।
2. जानना – जड़ - चैतन्य का विवेक।
3. छोड़ना – पंचविषय, देहाभिमान, गलत पक्ष।
4. समझना (पहचानना) – भगवान का स्वरूप।
5. रखना – ब्रह्मरूप होकर परब्रह्म।

   भगवान की भक्ति करने में तीन बड़े विघ्न हैं; वे निम्नलिखित हैं –

   मुक्तानंदस्वामी का प्रश्न है। *(वचनामृत गढडा अंत्य प्रकरण 8)*

1. अपने दोषों को देखे नहीं।
2. भगवान के भक्त से मन अलग हो जाए।
3. भगवान के भक्त के प्रति लापरवाही हो जाए।

मुक्तानंदस्वामी का प्रश्न – वचनामृत अंत्य. प्रकरण 5ः

माहात्म्ययुक्त भक्ति उदय होने का क्या साधन है?

श्रीजी महाराज का उत्तर है –

शुक-सनकादिक जैसे बड़े संत की सेवा और उनके 'प्रसंग' से माहात्म्ययुक्त भक्ति जीवों के हृदय में उदय होती है। माहात्म्यरहित भक्ति क्षय रोग युक्त है। जैसे दस साल की किसी लड़की को क्षयरोग हो जाए, तो वह युवती होने से पूर्व ही मर जाती है; वैसे ही माहात्म्यरहित भक्ति क्षीण हो जाती है। वचनामृत सारंगपुर 5।

पहली बात –

निर्दोषबुद्धि हर एक में रखना, यही हमारी सेवा है। गढडा मध्य 28 के वचनामृत में (लिखा है) –

भक्त का भक्त बनना। वचनामृत गढडा प्रथम 58 – पक्का हरिभक्त किसे जानना? हरिभक्त के दास का दास होकर रहना।

वचनामृत गढडा मध्य 62 – तीन अंग में से एक अंग रख कर, देहभाव छोड़ कर भगवान के धाम में जाना। आत्मनिष्ठा की उत्तम (स्थिति), पतिव्रतात्व, दासत्व। दासत्व में चार बातें समझने की आती हैं:

1. इष्टदेव के दर्शन जँचे,
2. इष्टदेव के सान्निध्य में रहना जँचे,
3. इष्टदेव की क्रिया जँचे
   और
4. **अपने** इष्टदेव का स्वभाव जँचे।

ये चार बातें समझनी हैं। ये बातें समझ कर, जीव में उतारना।

दूसरी बात –

एक दूसरे की झंझट नहीं करनी। एक की बात दूसरे को करना और दूसरे की बात अन्य को करना, यह स्वभाव साधुता के मार्ग में खोट लाएगा। अतः जिसे मोक्ष चाहिए, उसे यह स्वभाव छोड़ देना चाहिए।

तीसरी बात –

स्वामी जागास्वामी कहते थे कि यदि दुर्गुण (दोष) देखने का मन हो, तो अपनी देह का, अपने स्वभाव का और अपनी जाति का देखना, किन्तु ब्रह्मस्वरूप एकांतिक भगवान के भक्त का दुर्गुण नहीं देखना।

चौथी बात –

'सहनशक्ति' – यह जबरदस्त गुण है। कोई कटाक्ष में कुछ कहे, तब भी उत्तर देने के बजाय सहन कर लेना – इसे कहते हैं क्षमा गुण! क्षमा करने से हमारे हृदय में शांति अखंड आती है, आनंद के फव्वारे उठते हैं और बड़े (संत) हम पर प्रसन्न होते हैं। स्वामी मूल अक्षरब्रह्म कहते थे – *'देहांत हुआ' उससे क्या ? (हमें तो) साधु होना*

है, साधुता सीखनी है। 'मर गए, सो पूरा हुआ और कुछ करना बाकी नहीं रहा' – ऐसा नहीं समझना। स्वामी जागाभक्त स्वामी कहते थे – *पर क्रिया, पर आकार और पर दोष हमारे भीतर नहीं आने देना।* स्वामी कहते थे कि कहीं बात होती हो, तब अपने अंग की जो हो, इतनी ग्रहण करनी और बाकी बातें छोड़ देनी; (और सोचना) कि ये बातें और भक्त के लिए हैं, मेरे लिए नहीं हैं। इससे 'हमने उनका अवगुण लिया' – ऐसा दोष हम पर नहीं आएगा।

पाँचवी बात –

समूह में यदि कोई बात हो रही हो और हम से कोई बड़ा व्यक्ति वह कह रहा हो (और वह बात हमें उचित न लगे), तो उनकी बात उस समय सुन लेनी और उनके अंतर में जब हमारे प्रति लगाव हो, तब बात करनी। प्रथम लगाव कराना सीखना। लगाव होने पर बात भीतर में बैठती है। अतः लगाव होने के बाद अपना सिद्धांत कहना।

छठवीं बात –

'सुहृद्‌भाव' का बड़ा गुण सीखना। एक दूसरे की क्रिया आपस में संप से कर लें – वह है सुहृद्‌भाव। एक-दूजे की 'सेवा' कर लेनी। यदि कोई कुछ कह भी दे, तो सहन कर लेना और दूसरे किसी को कहना भी नहीं कि *मुझे फलां ने ऐसा कहा। 'अहो! मेरा कितना सद्‌भाग्य कि ऐसे कहने वाले मुझे मिले'* – यूँ कहने वाले का गुण ग्रहण करना। 'अंतर में सुहृद्‌भाव होगा, तो अन्य अनेक जबरदस्त गुण (पीछे-पीछे) आएंगे' – ऐसा स्वामी का वचन है। अतः सुहृद्‌भाव अवश्य रखना।

सातवीं बात –

कथावार्ता का व्यसन रखना। कथावार्ता का व्यसन हो, तो इसके बिना रहा ही न जाए। बड़े संत बात करते हों और हम अनुपस्थित हों, तो दिल में दाह लगना चाहिए। जब कथा सुनें, तब शांति होनी चाहिए। अतः शब्द (चातक पक्षी वर्षाबिंदु ग्रहण करता है इसी प्रकार) ग्रहण करना सीखना। एक भी शब्द वृथा नहीं जाने देना। नई-नई बातें स्मृति में रखनी। तब ही 'श्रुत' कहा जाता है। अतः सच्चे अर्थ में श्रुत होना।

ये सात बातें अंतर में-गहराइयों में उतार कर-समझ कर प्राप्ति की खुमारी रखनी। बातें तो बहुत हुईं; किन्तु संक्षेप में इतना समझना है कि बड़े संत बात करते हों, तब ध्यान से-एकचित्त से सुनना। बीच में बोलना–करना नहीं। बड़े संत के वचन त्वरित ग्रहण कर लेना।

बोलो, स्वामिनारायण की जय।

बोलो, मूल अक्षर स्वामी की जय।

बोलो, शास्त्रीजी महाराज की जय।

लि. सदा सेवक ज्ञानजीवनदासजी
मंगलवार, दि. 1-4-41

मितभाषी होना। वाणी का उपयोग दूध की भाँति करना, पानी की तरह नहीं करना। बक-बक नहीं करना। यथायोग्य ही बोलना। सत्य, हित और प्रियकर वचन बोलना। सो, सब का हमसे लगाव हो; ऐसा अंग (स्वभाव) रखना।

इतना पाठ करने से शांति रहेगी। शूरवीर बनना; जिससे कि हमारे इन्द्रिय-अंतःकरण हम से निरंतर काँपते रहें और गलत विचार-संकल्प उठ भी न पाएं। वचनामृत अंत्य प्रकरण 2 रात-दिन पढ़ते ही रहना।

ये बातें याद रखना।

पूज्य भगतजी महाराज, पूज्य स्वामी जागाभक्त, पूज्य अदाश्री और पूज्य शास्त्रीजी महाराज को याद करना और नित्य (उनकी) स्मृति रखना।

कोई समझाए–मनाए और हम वेग में हों, तब भी मान जाना-यह जबरदस्त गुण है। अपनी बात पर अड़े नहीं रहना। एक बात सीखनी है-तुरंत मान जाना और अपना 'ब्रह्मस्वरूप' का आनंद एक क्षण भी, कम नहीं होने देना। काम, क्रोधादि के संकल्प उठें, तो 'ज्ञान' से उनको दबा देना। *'अगर मलिन विचार किया, तो तुझे चूर-चूर कर दूँगा'* –(ऐसी शिक्षा अपने मन को देनी चाहिए)। राजनीति का वचनामृत गढडा मध्य 12 पढ़ना। फिर एक भी संकल्प नहीं उठेगा। सांख्यविचार करना। देह, लोक, भोग मिथ्या समझना। नित्य सुबह में यूँ सोचना : *'मैं गुणातीत हूँ और मेरे भीतर स्वामिश्रीजी साक्षात् बैठे हुए हैं।'* अपने आपको प्रत्यक्ष ब्रह्मस्वरूप मानना, यही विनती है। भूलचूक सुधार कर पढ़ना।

द. साधु ज्ञानजीवनदासजी
चैत्र शुक्ला चतुर्थी, मंगलवार

स्वातिबिंदु

[ब्रह्मस्वरूप स्वामिश्री शास्त्रीजी महाराज और गुरुहरि योगीजी महाराज का संबंध 'एक श्वास-एक प्राण' का था। दोनों एक ही 'विभूति' थीं। तब भी जगत के सामने दोनों का व्यवहार गुरु-शिष्य का था! दोनों का हृदय भगवान स्वामिनारायण के प्रति श्रद्धा से भरपूर था। दोनों अक्षरपुरुषोत्तम के उत्तराधिकारी थे और ब्रह्मस्वरूप थे। यही तो ऐक्य था - अद्वैत था! ऐसे एकीभूत हृदय जब आपस में बात करते हैं, तब पारदर्शक हृदय से ***'स्वातिबिंदु'*** *समान मोती टपकते हैं... नितांत शुद्ध, नितांत श्वेत, नितांत सरल! और... इनका मूल्य सामान्य नहीं होता है।*

गुजरात के महेळाव गाँव – ब्रह्मस्वरूप स्वामिश्री शास्त्रीजी महाराज की प्राकट्यभूमि! सन् 1966 में गुरुहरि योगीजी महाराज, संतों और हरिभक्तों के साथ वहाँ गए थे। वहाँ ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज की संगमरमर की मूर्ति के समक्ष योगीजी महाराज खड़े रह गए और उनके गद्गद् कंठ से वाणी प्रवाहित हुई, सीधी अंतर से अंतर की ओर! एक चैतन्य दूसरे चैतन्य को विनम्र और प्रार्थनामय स्वर में कुछ कह रहा था। उस समय वहाँ सब को लगा कि योगीजी महाराज संगमरमर की मूर्ति के समक्ष नहीं, अपितु साक्षात् शास्त्रीजी महाराज से बात कर रहे हैं। वह वाणी अमर हो गई, प्रेरक बन कर स्वीकृत हो गई!

मुमुक्षु के चित्त को उजागर करके अध्यात्म चेतना में सुप्रतिष्ठित कर देने वाली ऐसी वाणी अत्यंत महत्त्वपूर्ण, अत्यंत मूल्यवान होती है। वही वाणी ब्रह्मस्वरूप काकाजी महाराज के हाथ आई और... उन्होंने उसकी एक झलक हमारे लिए अलग कर दी थी। हमारे जीवन में तदनुसार यदि व्यवहार आ जाए, तो हम धन्य हो जाएंगे। अतः यहाँ वह पुनः प्रस्तुत की जा रही है।]

हे शास्त्रीजी महाराज!

1. आपके संबंध वाले कैसे भी हों, हम उन्हें सिर का ताज मानें –
   ऐसा आशीर्वाद दीजिए।
   'तुलसी ज्याके मुखन से...' उनके साथ मनमुटाव की गाँठ न पड़ जाए;
   उन्हें हम पहचान पाएं ऐसी सुबुद्धि दीजिए।
   अपने जैसी सुबुद्धि हमें प्रदान कीजिए।
2. आज प्रार्थना करें और कल पलट जाएं – ऐसा न हो, यह प्रार्थना है।
3. रात-दिन हम आपको प्रार्थना करें, आपकी ही स्मृति में रहें, एक क्षण के लिए भी आपको भूलें नहीं... आपके प्रति जो भाव है, वैसा ही भाव आपके भक्तों के

प्रति भी रहे, मनुष्यभाव न आए। आप साक्षात् कैवल्यमूर्ति हो, पर आपके भक्तों को भी कैवल्यमूर्ति मान सकें, ऐसे आशीर्वाद दीजिए। आपके भक्तों में हमें दिव्यभाव रखवाना।

4. भगवान और संत को हम कभी भी मोहताज न करें – ऐसी बुद्धि देना।
   हमारा मन कभी पलटे नहीं। सदा एक (निश्चल) मति रहे, ऐसी प्रार्थना है।
5. कभी भी हम मनमुखी न रहें। मनमुखी (रहना) बाहर से तो बढ़िया गुण दिखाई पड़ता है, किन्तु वह गुण नहीं कहा जाए।
6. ऐसा (भव्य) संबंध हुआ, अब हम शोक में परेशान न रहें, ब्रह्मानंद में रहें।
   हम में क्रोध, दगा, प्रपंच, मान न रहे – यह दीजिए।
7. आप निर्दोषबुद्धि के भूखे हो।
   आपके भक्तों में यदि हम निर्दोषबुद्धि रखेंगे, तो आप हम से प्यार रखोगे; यदि (निर्दोषबुद्धि) नहीं रखेंगे, तो आप हमें अपने पास फटकने नहीं दोगे (नहीं बैठाओगे) – दूर कर दोगे।

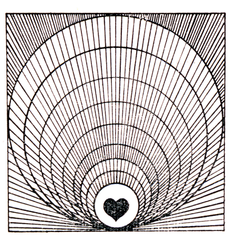

गुणातीत समाज का मॅग्नाकार्टा

[1952 की 3 फरवरी को प.पू. काकाजी महाराज को हुए साक्षात्कार के बाद,
धाम, धामी और मुक्तों को– भगवान, संत और सत्संगी को ही सत्य मान कर,
प.पू. काकाजी, प.पू. पप्पाजी और प.पू. कांतिकाका के परिवार ने मिल कर
अकल्पनीय कसनी सह करके जीवन जीने की पहल करी
और...
करीब डेढ़ सौ साल पहले महाराज ने
वचनामृत अंत्य. प्रकरण के 21 में जो कहा था –
'ऐसे जो दृढ़ सत्संगी वैष्णव हैं, वे ही हमारे तो सगे संबंधी हैं
व
वही हमारी बिरादरी है...'
उसे सामूहिक रूप से प्रवर्ताया।
यूँ, इन्होंने 'गुणातीत समाज' का पौधा लगाया,
जो आज देश-विदेश में फला-फूला दिखाई पड़ता है।
इस गुणातीत समाज की अखंडता, एकता व एक सूत्रता हमेशा बनी रहे,
इस हेतु–
1986 की 26 जनवरी को प.पू. काकाजी ने 'गुणातीत ज्योत' के चौक में
गुणातीत समाज के नाम मानो आख़िरी संदेश दिया था,
और... उसे 'मोती बिखरे चौक में' पुस्तक के रूप में प.पू. काकाजी महाराज के
'साक्षात्कार की स्वर्णजयंती' के उपलक्ष्य में 13 मार्च 2000 को प्रकाशित किया था।
***प.पू. पप्पाजी महाराज** इसे 'गुणातीत समाज का मॅग्नाकार्टा' कहते थे।*
वह 'मॅग्नाकार्टा' हम से नज़रअंदाज न हो जाए, इस भावना से यहाँ दोबारा प्रस्तुत कर रहे हैं...]

मंगल प्रवचन

26 जनवरी 1986, रविवार

प.पू. काकाजीः हरे!
प.पू. पप्पाजी : बढ़िया पाथेय बंधा दो, फिलहाल घर-घर के सभी बैठे हैं।
सभा में जनरल बात करना, अभी घर की बात करो।
ठीक कह रहा हूँ न साहेब?

प.पू. काकाजीः वाह-वाह-वाह, हा-हा-हा... भई-बड़े भाई हैं...
'वाणी अमृतथी भरी मधुसमी संजीवनी लोकमां,
दृष्टिमां भरी दिव्यता नीरखता सुदिव्य भक्तो बधां,
हैये हेत भर्युं मीठुं जननीशुं ने हास्य मुखे वस्युं,
ते श्री ज्ञानजी योगीराज गुरुने नित्ये नमुं भावशुं,'
सहजानंदस्वामी महाराज की जय!
जैसे ग्राहक हों, ऐसी बात हो।
कोयले की भी दलाली हो, सब्जी की भी हो?
सौ मन सब्जी बेचो, दलाली में कितने मिलेंगे?
कोयला बेचो, उसमें कितने?
यह हीरे का व्यापार है।
बापा की पहचान हुई, शास्त्री महाराज की–मानवस्वरूप में हमें जो पहचान हुई,
वह भगवान की पहचान हुई।
हमने देखे, पहचाने, पार्श्यली अनुभव भी किया।
जानवर में से मानव हुए, तब से यह करते आए हैं।
तीस हज़ार साल का इतिहास यह बताता है।
सभी अवतार आए।
लेकिन महाराज पधारे तब से एक रुचि, रहस्य, अभिप्राय और सिद्धांत;
फिर पप्पाजी ही हमें आज का एक रहस्य बताएंगे।
हिन्दू-मुसलमान, आसमान-जमीन में जितना फर्क है,
उतना रुचि और सुरुचि में फर्क है।
संभव है, पप्पाजी जब बात करते हैं–'यह ब्रह्मनियंत्रित समाज है'–
बापा कहते–ओहो! अखंड अक्षरधाम में ही हो–
इस दर्शन से तुम्हारा पूरा हो गया, यह धब्बा लिया–अक्षरधाम!
लेकिन वह क्या? तो जिन्हें मर कर पाना था–जीतेजी मिले!
तुमसे यह माना नहीं गया।
माना, तो तत्त्व से पहचाना नहीं। वह तत्त्व – यह।
पहचाना, तो अखंड धारा नहीं।
अखंड धारा, तो उसकी अवेरनेस में भी थोड़ा रहा कि
मैं धारक हूँ, मैं अष्टांगयोगी–गोपाळानंदस्वामी हूँ, मैं स्वरूपानंदस्वामी हूँ।

यह 'हूँ' की जो अस्मिता रही!
उसकी बजाय बापा यूँ कहते–तू मेरा प्रकाश-तू प्रत्यक्ष ब्रह्मस्वरूप।
'स्वरूप-स्वरूपी के ऐक्य वाला, मैं तेरा प्रकाश!'
पप्पाजी यह सूत्र पहले से ही–ध्यान कराते तब से सिखाते हैं–करवाते हैं।
फिर भी संकल्प का–
एक बार–हमारे अश्विनभाई बैठे हैं,
उन्हें कई साल पहले-बहुत वर्ष पहले–
कितने वर्ष हो गए होंगे अश्विनभाई?
मैंने यह सूत्र कहा था–कब? याद है?
(पू. अश्विनभाईः सांकरदा-सांकरदा मंदिर में।)
प.पू. काकाजीः मैंने कहा था-
अश्विनभाई, **हम जो अब लग पड़े हैं**–
तुम्हें बापा ने कहा था–अश्विनभाई जाओ! **ब्रह्मविद्या की कॉलेज चलानी है।**
वहाँ चलती है–साहेब के पास, ब्रह्मविद्या की कॉलेज चलाते हैं।
मैं और पप्पा–दोनों,
उसके पी.एच.डी. की ट्रेनिंग देने वाले मास्टर–ब्रह्मविद्या के।
सो, वे बहुत खुश हो गए।
दो-तीन जगह से घूमते-फिरते, भटकते आए थे–वो और शांतिभाई!
तो, उन्हें कहा–ब्रह्मविद्या की कॉलेज चलाओ।
यह सारी ब्रह्मविद्या की कॉलेज है–साहेब।
भगवान मिलने के बाद की है यह–भगवान मिलने के बाद की है यह।
कॉन्सियसनेस के दरवाजे पर तो हम रहते ही थे।
लेकिन सबसे पहली चीज़ इस कॉलेज में–
आर.डी. पटेल साहेब वह जो परीक्षा–लेते हैं न? पास होने की–
उसमें अब तो 80-80 प्रतिशित मार्क्स–उससे ऊपर भी ले आते हैं सब।
पता नहीं, चोरी करते हैं या पैसे खिलाते हैं, क्या होता है?
हमारे समय में तो 62-65 प्रतिशत भी मुश्किल से–
चाहे जितना मर्जी पढ़-पढ़ कर मर जाएं–तेल निकल जाए
तब भी नहीं आते थे।
अब कैसे लाते हैं, कुछ समझ में नहीं आता।

सब कुछ कोमर्शियलाईज़ हो गया है।
लेकिन, **यहाँ कोमर्शियलाईज़ बिल्कुल नहीं चल पाएगा।**
सो, सबसे पहले-यह कॉलेज-ब्रह्मविद्या की–**गुणातीत की यह कॉलेज है।**
वह महाराज की कॉलेज बिल्कुल अलग,
उसके नियम भी अलग, उसका साधु भी अलग।
सबसे पहले तो–उसका साधु कौन?
आत्मनिष्ठा, स्वरूपनिष्ठा, स्वधर्मनिष्ठा। 30-40-39 ये सब गुण जिसमें हो।
भगवान भी कहा जाए वह, छोटा-बड़ा।
लेकिन, उसमें भगवान का प्राकट्य पाँच प्रकार से रहता है।
पहले तो–उस साधु और भगवान का अखंड संबंध होना चाहिए।
उसमें तीन गुण होने चाहिएँ–मिनिमम।
भले, एकादशी व्रत करने में शायद आलस भी कर जाता हो,
सोता भी रहता हो, ऐसा-वैसा कुछ हो।
लेकिन उसमें तीन गुण : महाराज के साधु में–
स्वधर्मनिष्ठा, आत्मनिष्ठा और स्वरूपनिष्ठा।
सत्संगी को–नियम, निश्चय और पक्ष।
अब चार नियम रखते हैं; ब्राह्मण का–छूआछूत का बहुत नहीं रखते।
युगधर्म बदल गया है।
एकांतिक धर्म-दारु, मद्य, चोरी, व्यभिचार-जुआ।
फिर, हमारे यहाँ निष्काम और निर्मानी जो कहते हैं,
लेकिन उससे भी अधिक–मुक्तानंद और ब्रह्मानंदस्वामी
ऐसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी नहीं थे क्या?
फिर भी अपूर्णता और कल्पना रह गई। महाराज में मनुष्यभाव रह गया।
अब, यहाँ से हमने शुरूआत करी–ब्रह्मविद्या की कॉलेज!
बापा ने; ओहो! गुणातीत ज्ञान की यह मैं बात कर रहा हूँ।
फिर दो मिनिट गुणातीत भावना की बात करूँगा।
और
फिर पप्पा आशीर्वाद देंगे। पप्पा के पास से आप सभी समझना!
रुचि-सुरुचि ये शब्द बहुत भारी हैं।
महाराज की रुचि, रहस्य, अभिप्राय और सिद्धांत–इससे परे की यह बात है।

यह **गुणातीत ज्ञान यानि? साक्षात् ज्ञान।**

इसी पल ही–उनके दर्शन से तुम्हें अष्टांग योग सिद्ध हो गया।

बापा के दर्शन से ही अष्टांग योग सिद्ध हो गया।

पप्पाजी, काकाजी, साहेब, स्वामी – हम यह मानते थे।

बोलते नहीं थे, मानते थे। तो, सर्वस्व का अर्पण भी किया।

हमने बापा को पूछा–बापा! आप कब पधारोगे ज्योत में मुहूर्त के लिए?

मुझे नहीं पूछना।

दूसरी बार, तीसरी बार।

बापा, आप जो कहो वही करना है।

धन, धाम, कुटुंब, परिवार, इच्छा, भाव, विचार सब कुछ,

सर्वस्व आपके चरणों में; अवर थॉट्स ऑलसो।

हम दोनों भाइयों ने 'गाना' (गाँव) में पूछा थाः

'चांगा' हो या 'गाना' हो–गाना।

बापा ने कहा–मुझे नहीं पूछना। तुम दो एक होकर करो, जाओ–

(उसमें) मैं आ गया।

महंतस्वामी को बोले–महंत कहे वह करो।

वहाँ पूछने गए तब– अब हमें क्या करना है? वो और हरिप्रसादजी।

तो बोले– महंत कहे वह करो, महंत कहे वह करो!

देखो, वहाँ से हमारी शुरुआत हुई। एक दूजे के अंतर्यामी!

बाह्यामी–परात्पर–साक्षीरूप भगवान–कर्मफलदाता और अब मूर्तिमान!

साक्षीभेदन हुआ।

तो पहला सूत्र–

कॉन्सियस तो थे ही, भगवान के साथ थे! लेकिन, माने नहीं गए।

माने, तो पहचाने नहीं।

नहीं तो, **इस पहचान से ही अखंड अक्षरधाम में हो।**

पप्पाजी जो सिखाना चाहते थे, वह यह कि–ब्रह्मविद्या की कॉलेज है

यह–ब्रह्मविद्या की।

ऐसी एक विद्या कौन-सी है जिसे जानने से सारी विद्या जान पाएं?

वह विद्या कौन-सी? जिससे सभी–सभी प्रकार के–

पाँचों स्वरूपों का साक्षात्कार हो जाए?

हमारा जो **साक्षात्कार**–पप्पाजी का और हमारा–**वह कुछ अलग है,** वह अलग है।
यह ज्ञान समाधि का साक्षात्कार है–ज्ञान समाधि का!
जहाँ ज्ञान समाप्त हो गया।
ज्ञान, वहाँ पूर्ण श्रद्धा–**क्रियेटिव श्रद्धारूप से 'स्वरूप' बन गया।**
'ज्ञान'–**जानने का अंत आ गया।**
उनके चरण कमल में हम सम्यक्–सम्यक् प्रकार से, **'मैं तेरा प्रकाश'**;
यहाँ से हमारे **गुणातीत ज्ञान की शुरूआत हुई।**
वहाँ पहले क्या होगा? तो–तीन गुण से पर!
तुम सब साधु हो। इस हॉल में जो बैठे हैं, वे भी साधु हैं।
बा भी स्त्री नहीं, पुरुष नहीं। वह भी, एक गुणातीत संत है।
इस प्रकार का जब तक तुम्हारा नज़रिया न बदला हो,
तब तक बा-बा लगेंगी, वो-वो लगेगा।
सो, तीन गुण से पर–पहले तुम एन्टर हुए–सत्त्व, रज, तम से?
यह निर्गुण सभा है–यह अक्षरधाम की सभा है।
यह गढ़डा शहर या कुछ नहीं, हे काठी लोग!
वे काठी लोग यानि हम ही थे उस समय–महाराज के समय!
लेकिन यह कसर–जूनागढ़ के जोगी को पहचाना नहीं–सो रह गई!
साधु को पहचाने बिना–साधु को पहचाने बिना–**गुणातीत पुरुष को पहचाने बिना महाराज तत्त्व से–जैसे हैं वैसे पहचान ही नहीं सकते। अशक्य वस्तु!**
उनके साधर्म्य को–महाराज के (साधर्म्य को) पा नहीं सकते,
लेकिन गुणातीत के साधर्म्य को (पा सकते हैं)।
इसकी शुरूआत यहाँ से होती है।
साधर्म्य यानि–उनके समान गुण–ब्रह्म के समान गुण,
अति बड़े पुरुष को–बापा को देखने के बाद।
अश्विनभाई को मैंने कहा–भाई! अब यहाँ आए हो–
ब्रह्मविद्या की कॉलेज में दाखिल हुए हो;
शांतिभाई! तुम जहाँ हो (जिस कक्षा पर हो) वहाँ से
साहेब द्वारा ही, तुम्हारी पूर्णाहुति होने वाली है।
वे अस्सी मुक्तों के महारथी हैं। छात्रालय तो एक निमित्त था।
हमें अनुभव भी हुए।

मैंने कहा–संकल्प की बीमारी टालनी बाकी रही है।
सो–ये अश्विनभाई ज़रा विनोदी हैं।
और मेरे साथ उन्हें पहले से दोस्ती। तब वे गंजे थे।
मैंने कहा–अरे साधुराम!
तो बोले–आपको मेरा नाम कैसे पता?
मैंने कहा–वैसे भी भगवान ने मुझे थोड़ा तो अंतर्यामीपन दिया है।
मैं कहने गया–'संकल्प का'–
तो बोले–हाँ, आपको एक आदत है।
यह हमारा मुकुंद कहता कि
काका कोई न कोई नया शब्द–न हो वहाँ से–लगा देंगे,
(प.पू. पप्पाजी हँसते हैं।)
मैंने पूछा–गेहूँ की कितनी आईटम होती हैं? बोले कि–पूरी, यह रोटी।
मैंने कहा–चौसठ आईटम होती हैं, चौसठ आईटम–गेहूँ की–हं।
बोलो, पता है तुम्हें?
गेहूँ की चौसठ आईटम बनती हैं।
तो वह बोला–यह तुम बात जो करते हो,
ये नए-नए शब्द कॉईन कहाँ से (करते हो)?
मैंने कहा–यह मेरा बाप लिख गया है।
चौदह प्रकरण की बातों में नौ जगह पर 'संकल्प की बीमारी' लिखी है।
तो बोला–भई!
पर, तुम्हें समझना हो तो बात करें न?
मैं कहूँ कि 'माजीकूला।'
तो वह मारने दौड़ेगा कि माजी का कूल्हा याद करता है।
अरे भई! माजी यानि–पानी, कूला यानि–पीना है।
यह हम अफ्रीका की भाषा बोले–हें?
'वेवे नामनागानी'–हें? 'अपाना, बानाडोबो–बानाकूबा–माजी कूला।'
यानि–माजी का कूला है क्या?
यह भाषा नहीं समझ पाओगे।
यूँ बापा बोलते थे।
हम बहुत लंबा भाषण करते न? माईक देखें और सभा ज़रा भरी हुई देखें न?

सभा में यदि दो-चार जने ही हों, तो हमारा मुँह लटक जाता।
लेकिन वो माईक देखें और सभा में काफी जने हों,
तो चमक आ जाए–जोश आ जाए।
फिर बहुत समय हो जाए, टाईम हो गया हो;
बापा के लिए बोलने का तो टाईम ही न बचे!
अरे! मेरा और पप्पा का यहाँ (सभाओं में) बोलने में भी तुम आख़िर में रखते हो?
अरे–तुम अभी अंधे हो, कुछ दिखाई तो देता नहीं।
तुम्हारी बात नहीं करता हूँ–आप लोग अपने पर नहीं लेना। (सभी हँसते हैं)
लेकिन, अरे! बोले कौन? जो देख पाता हो, वह बोले!
जो यूँ जिए हों, वह बोले।
ये गुणातीत शताब्दी या दूसरे उत्सव हम जब-जब मनाएं
तब मेहरबानी करके–मेहरबानी करके, बेकार में ऐसी ढोंगबाजी हम न करें।
तुम क्या कह पाओगे?
तुम्हें तुम्हारे स्वरूप का ही अभी साक्षात्कार दर्शन नहीं है–
तो क्या बात कर पाओगे?
पप्पाजी हों, स्वामिजी हों, अक्षरविहारी हों, साहेब हों–
वे कुछ बोलें, उसमें से समझने को–तुम्हें तुम्हारे भीतर का कोई भी प्रुड–
कोई कसर हो, वह पता चल जानी चाहिए।
यहाँ अखंड अक्षरधाम है, अक्षरधाम है यह।
यहाँ प्रकृति-पुरुष का कोई भाव नहीं।
तो, इस ब्रह्मविद्या की कॉलेज में–धन्यवाद!
हीरे की खान (में)–तुम आए!
वह **संकल्प की बीमारी टली? इस वक्त भी यही बात है।**
सबसे पहले, इच्छारहित–सभी! संकल्परहित–सभी!
अहं-**अहं–संकल्प का एक स्वरूप है**
और
इच्छाशक्ति–वो स्त्री, एक शक्ति है।
शक्ति और संकल्प–प्रकृति और पुरुष से पर का यह ज्ञान है।
ज्ञान यानि? मूर्तिमान गुणातीत स्वरूप!
ज्ञान यानि जानना नहीं।

चार वेद नहीं, **पाँचवां वेद–'ब्रह्मज्ञ' से तो शुरू होता है**
और
ऐसे गुणातीत पुरुष के संबंध में तुम्हें रखा।
तो मैंने कहा–अश्विनभाई! संकल्प की बीमारी टालनी पड़ेगी।
तो, पहले संकल्प का अनादर करो और आदर स्वरूप का करो।
आदर-अनादर, आदर-अनादर।
यह यहाँ से शुरुआत हुई
फलस्वरूप–पहली साल पास होने पर आर.डी. पटेल साहेब आपको कहें–
पचास प्रतिशत मार्क्स लाओगे, वह नहीं चलेगा;
यहाँ पिच्चहत्तर प्रतिशत मार्क्स चाहिएँ।
यानि क्या भई? कि–भले कैसे ही प्रसंग में
तुम पर सत्त्व-रज-तम गुण हावी नहीं होने चाहिएँ।
तीन गुण से परे–तीन गुण से परे।
हम करमसद के बड़े कुलवान कहे जाएँ।
चार नाई के बीच तो चलें, ऐसी हमारे बाप-दादा की विरासत।
उसमें से हमें कोई 'कणबी'– थोड़ा नीचा कह कर तो देखे!
यह ज्ञान कहना बड़ा आसान है,
लेकिन हमारे खून की बूंद-बूंद में ऊंचे कुल की कॉन्सियसनेस पड़ी है।
बचपन से यह सीखे हैं।
मेरे दादा थे, तब पप्पा तो पहले से सयाने और मैं–शरारती।
चौदह वर्ष की उम्र से वे हिसाब लिखते।
मुझे मेरे दादा कहते कि हिसाब लिखो।
मैं कहता–दादा, अभी से हिसाब नहीं लिखा जाता, सोलह वर्ष के बाद–
मनु भगवान ने ऐसा कहा है।
बाबु, यह मुझे उपदेश करता है–देख!
क्योंकि पप्पाजी पहले से बहुत (कम) बोलना–घी की भाँति वाणी का उपयोग करें–
पता नहीं (क्यों?) और वैसे–शांत।
वे लिखते, हिसाब लिखते।
हिसाब लिखना पड़े–(वह मेरे बस का नहीं); पर दादा के पास अपनी चले नहीं।
सो, तीन (3) की जगह सात (7) लिख दूं–एकदम!

तब वे बोलते–

अरे बाबु! इसने तो घोटाला कर दिया।

तू फिर से सारा जोड़ लगा, वर्ना उल्टा पड़ जाएगा।

ये खूब सयाने। फिर से सब ठीक-ठाक कर लेते। लेकिन कभी भी मुझे डांटा नहीं है।

मैं खूब उछल-कूद करने वाला, शरारती।

ओहो! खतम। मेरा नाम नहीं ले सकते थे।

मुझे घंटाकरण–गुरु घंटाल कहते। (सभी हँसते हैं।)

ये साहेब को कहा–बामण गाँव गए थे,

अरे ये गुरु घंटाल–तू यहाँ कहाँ से चढ़ बैठा?

बामण गाँव में–मेरे साथ मैट्रिक में था वो।

मैं उसे कहता कि उसका दीया बुझा दे।

मेरे दादा पैसे देते नहीं थे।

रीसेस में हमें चने और मुरमुरे खाने के लिए चाहिए थे।

सो, स्कूल से छूटने पर–हमारी पाँच जनों की एक गैंग थी; उसका मैं गैंग लीडर।

उसे मैं कहता कि तुझे दीया बुझा देना है।

यूँ वो दीया लेकर बैठा होता है न?

शाम का समय हो, पाँच-छः बजे (स्कूल से) छूटते थे;

सर्दियों के (छोटे) दिन होते थे।

संतराम मंदिर में वह दीया बुझाने के लिए फूंक मारे।

फिर एक जना उसके हाथ पकड़ कर रखे

और

मैं जेब-वेब भर कर, चने-वने, मूंगफली भर कर भाग जाता।

फिर उन साथियों को भी दूँ नहीं, उन तीनों जनों को।

वे कुछ बोल भी नहीं सकते। रिंग लीडर ऐसा जबरदस्त–भूपत जैसा।

ये सब शरारतें–यह सब कुछ; पर इसमें हमने भगवान ढूंढ लिए–हक़ीक़त में!

छोटे थे तब से कहते थे, हम दो (दोनों के लिए)–

बापा–शास्त्रीजी महाराज पहले से कहते–

डॉक्टर, ये तुम्हारे दोनों लड़के अनादि महामुक्त हैं।

और हम वर्ते भी ऐसे।

ये (प.पू. पप्पाजी) सांख्य के महाराजा-जबरदस्त! और योग का मैं महाराजा!

हम दोनों इकट्ठे हुए, वहाँ अक्षरधाम खड़ा हो गया।
योगीजी महाराज को मैंने कहा, पप्पाजी आओ–यह अकेले हाथ हो ऐसा नहीं है।
नो सिंगल मेन केन डु।
गुणातीत के रहस्य की यह बात है।
किसी एक व्यक्ति, कोई (भी) व्यक्ति को सर्वोपरि नहीं ठहराना, बिल्कुल।
कोई एक व्यक्ति को सर्वोपरि नहीं ठहराना।
(मू.अ.मू. गुणातीतानंदस्वामी) स्वामी कहते–मैं हूँ जबरदस्त, लेकिन....
कहते–मेरी अकेले की महिमा नहीं गाना, बिल्कुल नहीं गाना।
वर्ना, अपकीर्ति कराओगे।
पाँचवें प्रकरण की यह बात है–दो बार कही है।
मुक्तानंद, ब्रह्मानंद, गोपाळानंदस्वामी को साथ में लेकर हमारी महिमा कहना,
वर्ना तो अपकीर्ति करवाओगे।
मेरी अकेले की महिमा गाओगे, तो मेरे लिए दुःख खड़ा करोगे।
और वे छुपे रहे।
तो, दो-तीन मिनिट में ही बस–पूरा करता हूँ।
(सभा में से कोई बोलता है–फिर नौ बजे सभा है।)
हं.....
(दोबारा वो बोलता है–नौ बजे सभा है न?)
यह रहस्य था–साधु होने का; गृहस्थी-त्यागी का बिल्कुल मेल नहीं।
तो अश्विनभाई को कहा, हम संकल्प की बीमारी टालें।
मेरा यही कहना है–इस वक्त भी।
सबसे पहले की– ब्रह्मविद्या की कॉलेज में दाखिल हुए।
हमारा चुनी चतुर्वेदी था। सात साल लगे, मैट्रिक पास होने में।
कितनी धीरज होगी उसकी?
शास्त्रीजी महाराज ने कहा था, यह ज्ञान प्रकृति-पुरुष से परे (का) है।
गुणातीत पुरुष के बिना गुणातीत करेगा नहीं।
सिद्धदशा होगी, करोड़ों को सत्संग कराओगे, लेकिन खुद नर्क में जाए।
रिद्धि-सिद्धि, ऐश्वर्य–प्रताप, मान की थोड़ी-सी छींट भी;
तीन गुण से परे–निर्गुण–संबध से हो गए।
यह धब्बे में धाम दे दिया बापा ने; पर, पहचाना नहीं।

तब हमने बापा को–देवशी बापा को कहा, गोंडल यदि न जा पाएं
(क्योंकि विरोध के कारण जाने नहीं दें।)
ये बापा जहाँ चाहें वहाँ 'देरी' करेंगे।
राईट?
(पू. देवशी बापा प्रत्युत्तर देते हैं–राईट)
राईट!
तो माणावदर भी 'देरी' बापा ने करी।
11 प्रदक्षिणा करी (और कहा–) जाओ यहाँ 'देरी'!
आज पप्पा ने इतने सालों के बाद कहा–
तुम्हारा देह मंदिर बनाओ, तुम्हारे घर मंदिर बनाओ।
तुम जहाँ रहो वहाँ मंदिर, तुम्हारी फॅक्टरी मंदिर।
तो, और सब बातें छोड़ो। अब ब्रह्मविद्या की कॉलेज में तो आ गए।
पाँच-सात वर्ष बाद, दस वर्ष बाद, तो कोई पच्चीस वर्ष के बाद–
सद्‌गुरु बाहर निकले।
वे जो बड़े-बड़े थे न?
कोई गायों में बंध गए, सोनाबा की रोटी में बंध गए–सोनाबा नहीं, गंगाबा की।
लेकिन, सोनाबा के प्रेम में बंध गए।
'नो'।
मैं, ठाकुर और क्रिया–बस! बीच में तीसरा भी, कोई होना नहीं चाहिए।
फिलहाल बहुतों की अधिकतर कनिष्ठ मुक्त की स्थिति है।
पप्पाजी बोले कि जैसा हो वैसा परोसना। तो, बुरा नहीं मानना।
भगवान भी हैं, संत भी हैं, लेकिन तुम भी हो।
तुम ब्रह्म का प्रकाश हो–यह माना जाता है क्या?
करोड़ों ध्यान से भी यह बात अधिक है।
भजन से अधिक बढ़ कर स्मृति, स्मृति से अधिक ध्यान है।
ध्यान से अधिक अनुवृत्ति है, अनुवृत्ति से अधिक अभिप्राय है।
अभिप्राय से भी अधिक बात यह कि ये (जो) मिले हैं–
(अक्षर) धाम में हैं, वे ही ये हैं और मेरी आत्मा में अखंड विराजमान हैं।
जहाँ देखूँ वहाँ रामजी–दूसरा कोई न दिखाई पड़े।
'वसुधैव कुटुंबकम्'–ये बोलने की बात नहीं थी।

सोऽहम् के बाद – दासोऽहम् के बाद शुरू होता है यह।
गुणातीत में देखो–सभी 'दास' शब्द हैं।
महाराज में – सब आनंद करो, भई आनंद करो।
प्राप्ति हो गई – भगवान और संत की।
गढ़डा में काठियों को समझाते हैं।
यहाँ दास ही होंगे सभी। यहाँ (सभी) दास ही होंगे।
तो, दास के बाद की एक स्टेज है–यह ब्रह्मविद्या की!
(सत्त्व-रज और तम) गुण हावी हों ही नहीं।
दासानुदास-दासानुदास।
वहाँ से अश्विनभाई ने शुरू किया (और) शांतिभाई (ने)।
आज डॉक्टर सनंद–(पहले) इतना अधिक क्रोधी।
उसे तुम सहज भी एक शब्द कहो, तो घास के दो पूड़े लेकर...
उसका वह गाँव कौन-सा है? झारोला को जला दे।
उसे कोई कायदा–वायदा बीच में नहीं आता।
तुम्हारे करोड़ों ध्यान से अधिक मेरी यह बात–कौन सी? प्रत्यक्षभाव की!
प्रगट तो थे ही।
न तो निष्कुळानंदस्वामी समझे, सात माईल तक आ-आकर।
अब दो सौ साल के बाद तो वह पूर्णाहुति करो।
हमारा साक्षात्कार–पप्पा का, हमारा, स्वामी का, साहेब का–
(वह) कोई अलग है।
पूर्व के, अस्सी जनों के तो महारथी थे साहेब। तो फिर क्यों आए लेकिन?
भगवान, संत तथा भगवदी को जैसे हैं; वैसे तत्त्व से पहचानने।
पहचाने तो हैं, बैठे भी हो, लेकिन तुम भी हो न अब भी? तुम भी हो न?
तो, पप्पा और मैं कई बार बोलते–हमारी बहन को। हं!
यह सब हुआ–मेरी बहन (हमें) बहुत प्यारी थी इसलिए।
यह अकेले हाथ नहीं बना है।
किसी एक व्यक्ति ने किया, ऐसा भी नहीं है। बापा ने करा।
योगीजी महाराज अभी इस सभा में–शास्त्रीजी महाराज, महाराज हाजिर हैं। तुम्हारे हृदय में भी हैं।
और

उन्हें ही याद करके-चरणों में शीश झुका कर दीनता से याचना करें।
हे बापा! आपके स्वरूप की-
तुम्हारे स्वरूप मुक्तों के स्वरूप की –जैसी है, वैसी पहचान करवाना।
और
उसमें भी हम जाग्रत रहें, ऐसी अॅवेरनेस-अॅवेरनेस-
ऐसी गुणातीत अस्मिता प्रगटाना। गुणातीत अस्मिता।
ये शांतिभाई, डॉ. सनंद, मैं कहता हूँ, वी.एस.भी,
अश्विनभाई, हरिभाई साहेब भी ऐसे महारथी हैं-
उन्होंने यह अस्मिता प्रगटाई।
यह सारी बहुत लम्बी बात है – और भी।
थोड़े दिन बाद दोबारा कभी फुर्सत से आऊंगा, तब करूँगा।
आज तो पप्पा ने लाभ दिया
और
यह बात समझोगे, तो ही छुटकारा है।
जैसे महाराज ने कहा कि यहाँ लल्लु-पंजू का राज नहीं।
पर्वतभाई जैसे – अनंत पर्वतभाई! लेकिन संकल्प की बीमारी!
अखंड चिंतन करने वाले – पर्वतभाई, अनंत!
वो साधु को पहचाना? साधु को पहचाना?
तुमने पप्पाजी को पहचाना?
सारा मॉब कहता है हम : हरि-हरि!
वो हरिप्रसादजी को पहचाना क्या? तो तुम रहोगे नहीं। मैं प्रत्यक्ष ब्रह्मस्वरूप।
तू मालिक है। तू मुझे अखंड सावधान रखना।
जिससे कि – मेरी किसी क्रिया में हठ, मान, ईर्ष्या न आए।
बुद्धि के चार दोष बाधारूप न हों-संकल्प, विकल्प, विपरीतभाव, भेदभाव
और कहते हैं-
विरोधभाव भी-पाँचवां।
तुम्हें कोई भी शब्द न चुभे-भाव में बह न जाओ, गुण हावी न हो,
स्वधर्म चूके नहीं, मूर्ति भूलें नहीं।
लो, इस कक्षा पर तुम्हें ले जाना है।
करोड़ों-करोड़ों ध्यान से अधिक – एक ही यह बात;

आध्यात्मिक समता से शुरू होती है
और
मूर्ति में अखंड रहो। तादात्म्य-तादात्म्य!
तो जहाँ देखो वहाँ-
किसी भी प्रसंग-परिस्थिति में
हम पर (सत्त्व, रज और तम) गुण हावी न हों।
वो साधु! वो साधु! ये भगवा – त्यागी हुए।
भले वहाँ सात सौ साधु, हमारे पास चार सौ,
लेकिन सच में साधु – ये भगवा कपड़े वाला, हमारा अश्विन साधु है।
आज सभी साधुओं में देखना हो तो है-अश्विन!
तो फिर साहेब की तो बात ही क्या करनी?
तुम (सत्त्व, रज और तम) गुण में फंस जाते हो क्या?
हम – छः गाँव के पटेल को – कुलीन को 'कणबी' कह दे,
(तो) क्षोभ भी होता है क्या? तो हमारा नंबर भी गया।
प्रकृति-पुरुष से परे का यह ज्ञान है।
सतत अनुसंधान रखा तुमने। तो आज तुम भी ब्रह्मस्वरूप।
पप्पाजी तो दूसरी कक्षा वाले और तीसरी कक्षा वाले तक को कहते हैं।
लेकिन, **मैं मेरी परीक्षा में पास करूँ, ऐसे बहुत थोड़े निकलेंगे।**
इसलिए मैं तुम्हें बहुत जँचूगा नहीं – एकदम।
और
तुम्हें तालियाँ बजा-बजा कर-
वंदु सहजानंद रसरूप अनुपम सारने रे लोल....
बहुत खाया-पीया, दूधपाक पीया-धब्बा खाया।
यह महाराज का ज्ञान नहीं चलेगा।
साधु के ज्ञान में – तुम जहाँ हो, वहाँ से ही अपने संकल्प को तोड़ डालना।
दूसरा संकल्प फिर-किसी भी प्रकार की इच्छा-इच्छा रहनी ही नहीं चाहिए
और
इच्छा के बाद अपेक्षा नहीं – निरपेक्षभाव!
बा का प्रेम ऐसा निरपेक्ष है।
बात बहुत लम्बी है।

भगवान और संत - उनकी कृपा प्राप्त करो। उनके संबंध में रहो।
ऐसी आत्मबुद्धि और प्रीति से शुरू करो।
निर्दोषबुद्धि सम्यक् होनी चाहिए। अभी शर्ती निर्दोषबुद्धि है।
उसमें से आज–
मेरा साक्षात्कार दिन जब मना रहे हो, तब बापा को इतनी ही प्रार्थना :
महाराज! इन लोगों ने परिश्रम बहुत-बहुत किया है।
केवल आपके अनुग्रह से ही, आप इन्हें सम्यक् निर्दोषबुद्धि–
जहाँ देखो वहाँ रामजी, दूसरा नहीं। कुछ दिखाई ही नहीं पड़े।
आप में से आए वही इच्छा, क्रिया, संकल्प करना है। बाकी, जय स्वामिनारायण!
महाराज हमें कहीं फँसने नहीं देना।
हे दयालु! हमें जबरदस्ती भी ऐसा वर्ताना। यही गुरु चरणों में प्रार्थना।
दो जनों के साथ ऐसे रसरूप होना, भिन्न-भिन्न अंग वालों के साथ।
तभी यह शक्य होगा।
हमें बहुत गौरव है।
बहनों ने और तुमने खूब शोभा बढ़ाई है।
ऐसा खूब बल-
उड़ते कर दें – रॉकेट जैसे, यही गुरु चरणों में प्रार्थना!

❀ ❀ ❀

साक्षात्कार दिन के उत्सव की सभा

सुबह : **10.00 बजे**
मेरे ही साक्षात्कार दिन के निमित्त, मुझे ज्यादा नहीं बोलना चाहिए।
तुम्हें ही बोलना चाहिए।
लेकिन फिर भी, (प.पू. पप्पाजी हँसते हैं)
दूसरे किसी दिन ऐसा रखो तो अच्छा;
वर्ना तो आज मैं बोलूंगा, तो भी–
मेरी बातें कइयों को अभिमानरूप लगेंगी।
[**प.पू. पप्पाजी :** आपके साक्षात्कार का हम बोलेंगे।
आप हमारी कसर दूर करने के लिए,
जो–

सूझ देने की बात है, वह पहले करो।
सुबह आपने कहा कि सभी कनिष्ठ मुक्त हैं।
अब कनिष्ठ में से उत्तम किस प्रकार हो पाएं, वह रीति बता दो।
(प.पू. काकाजी धीमी आवाज में हँसते हैं।)
बस! और फिर आप आशीर्वाद देना; निपट गया हमारा।
साक्षात्कार तो हुआ ही है, भगवान ने कराया है।
अब उसमें क्या बार-बार कहा करना है?
हुआ–(सो) हो गया। अब करा डालो हमारा साक्षात्कार।
तब जाकर निपटे हमारा काम–पूरा! बस, हरे......]
(गले में खंखारते हुए प.पू. काकाजी प्रारंभ करते हैं)
वाणी अमृतथी भरी मधुसमी संजीवनी लोकमां......
(यहाँ रुक कर बोलते हैं)
इससे पहले–
श्रीमद् सद्‌गुण शालिनं चिदचिदि व्याप्तं च दिव्याकृतिं, जीवे साक्षर–
(प.पू. पप्पाजी और सभी हँसते हैं,
तो प.पू. काकाजी पूछते हैं-)
क्यों हँसे? क्यों हँसे लेकिन?
(और फिर खुद भी हँसते हुए कहते हैं–)
मैं ही क्यों गलती करूँ?
गुरुदेव को, सद्‌गुरुदेव को-हमारे प्रभु थे बापा, उन्हें याद करने से पहले–
प्रभु के भी प्रभु , एक सहजानंदस्वामी!
शास्त्रीजी महाराज ने–योगीजी महाराज ने कभी भी, सपने में भी–
स्वामी और पप्पाजी साक्षी हैं कि हम महाराज के बैल हैं–
यूँ बहुत बार वे बोले थे।
जागास्वामी-भगतजी महाराज की एक रॅकॉर्ड-
कांतिकाका ने एक वह रीबिन वाला टेपरॅकॉर्डर लिया था–
चक्कर घूमता हो ऐसा, उसमें थोड़ी बातें अभी भी हैं।
लेकिन कई-कितने शब्द तो सुनाई नहीं पड़ते।
शास्त्रीजी महाराज की एक रॅकॉर्ड है।
उस समय एक प्रश्न ये महानुभाव ने पूछ डाला था, मैंने ही पूछा था।

अपने प्रति इतना अधिक रोष, ओहो! कि
जहाँ-जहाँ भी नाम था, 'देरी' के ऊपर भी नाम था, सब मिटा दिया।
यह एक रहस्य है।
वचनामृत में गुणातीत का नाम कहीं नहीं मिलेगा, लो देखो।
भागवत में राधा का नाम कहीं नहीं मिलेगा, देखो।
अभी भी सारे अक्षरपुरुषोत्तम के इतने सारे विकासक्रम में भी
हरिप्रसाद, पप्पाजी, काकाजी, अक्षरविहारी, साहेब का
नामोनिशान भी नहीं होगा।
वाह-वाह!
यह परम रहस्य है। वह तुम्हें ढूँढ लेना पड़े।
सिद्ध होंगे, सर्वज्ञ होंगे, आकाश में उड़ते होंगे,
पानी पर चलते होंगे, जमीन में डटे रहते होंगे,
करोड़ों लोगों को सत्संग कराते होंगे-
दसवें प्रकरण की दो सौ तैंतीसवी या इक्तीसवीं बात;
लेकिन हम मनमानी करते होंगे
या
हमारे मन का आभास भी रहा होगा-
वह गोपाळानंदस्वामी का ज्ञान है।
और
वहाँ तुम किसी के अभाव-अवगुण में पड़ोगे ही,
क्षोभ रहेगा ही, पक्षापक्षी (खींचातानी) रहेगी ही।
उसमें कल **हरिप्रसादस्वामिजी ने**
पप्पाजी ने जो ये शुरुआत करी (थी) – व्रतधारी युवक और अंबरीष दीक्षा (की)
कौन जाने कब? हमें तो पता ही नहीं,
फटाक बिठा दिया बावन जनों को।
उसमें मैंने जब फकीरभाई का नाम देखा
और
हमारा वह 'मोटा' का भाई – क्या उसका नाम ?
'छोटा' – (ये) सब विभूति पुरुष देखे।
भगतजी हो, वो तो समझ सकते हैं,

दक्षा (के) हमारे सतुभाई हों, वह समझ सकते हैं।
लेकिन यह एकदम फकीरभाई को!
अभी तो उसे दादा की हैसियत से कितने पालने झुलाने होंगे।
कई कितनी उमंगें होंगी (उसे)।
उसकी तो अभी हमें दावत भी नहीं दी।
सारे समाज को दावत देनी चाहिए।
सांकरदा, यहाँ–हर जगह; समाज के लिए एक दिन ऐसा रखना चाहिए।
भगवान ने उसे दिया भी है
और
हम आनंद करते।
उसकी बजाय उसे बिठा दिया!
'अंबरीष दीक्षा' यानि–अब एक 'बॅज' मिल गया,
यूँ, यह स्वामी ने गले में डंडा लटका दिया–बावन जनों के।
इससे अधिक, एक भव्य काम किया,
जैसे पप्पाजी (ने) साथ (में) रह कर-बहनों का।
हमने यहीं मुहूर्त किया था–बापा की हाजिरी में।
बापा बोले थे, यह सनंद बैठा है–वो, सनंद
और
एक सुधा बहन का लड़का था–
(पू. साहेब बोलते हैं - 'गगन'। सो, प.पू. काकाजी पूछते हैं-हें ?
दोबारा पू. साहेब कहते हैं -'गगन'। सो, प.पू. काकाजी वह रिपीट
करते हैं - 'गगन')
जो कॅन्डल कट करता था, हजामत–कॅन्डल कट - कॅन्डल कट।
वह यही रसोई, यही वाली रसोई। (फिलहाल विद्यानगर में बनी रसोई)
बापा को मैं (वहाँ) ले गया था।
बापा कितने चालाक? देखो, रहस्य की बात आज करता हूँ।
मैंने कहा बापा, अब वे सब देखने के लिए आने वाले हैं न?
तो बोले–तुम ऐसा कहना कि (अभी) लिन्टल तक आया है–लिन्टल (तक)!
मैं भी नहीं समझता था,
मेरा बाप भी शायद समझता होगा या नहीं कि लिन्टल यानि क्या?

(फिर हँसते-हँसते बोलते हैं-)
बापा ने यह ढूँढ निकाला कि–
(अभी) लिन्टल तक आया है–यूँ कहना।
मैंने कहा, लेकिन बापा-वे कहते हैं कि हमें आना ही है।
तो बोले–अभी लिन्टल तक आया है, स्लॅब भरने दो-स्लॅब भरने दो,
बाद में आओ;
खुला है, तो धूप लगेगी–ऐसा कहना।
इतनी रक्षा–इतनी रक्षा।
मैं एक दूसरा ड्रामा करने वाला था।
पप्पाजी ने भी एप्रुवल दी कि दादु की दोबारा शादी कराओ।
लंडन की एक लड़की भी देख रखी थी।
नाम भी कुछ था–मंजुला या ऐसा।
वहाँ के किसी होटल वाले की लड़की, उन्होंने ही सिलेक्ट की थी-
कि ऐसा मेरा भाई!
भगवान की इच्छा।
मैंने बापा को पूछा; बापा को पूछे बिना तो कुछ करना ही नहीं था।
लंडन में उस समय दस लाख रुपये तो कमीशन (मिलता था)।
थर्टीवन–इकत्तीस की उम्र।
हमारे यहाँ तो 60 साल के बाद भी शादी करते हैं।
मैंने बापा को पूछा–बापा इसका कैसे करना है?
वे और नंदाजी पूछने गए थे कि यह सब मैं क्या देख रहा हूँ?
मेरे भाई को इन सब ने पागल कर दिया।
छत पर जाकर पप्पा रोते।
डेढ़ सौ-डेढ़ सौ पाऊंड मुझे पढ़ाई के लिए भेजते कि–
भई तू पढ़, होशियार (है) पहले से ही।
वे खुद बहुत शांत,
सीधा घर से जाना स्कूल, स्कूल से सीधे निकल कर घर आना। ओलिया भाई!
और
मैं स्कूल से निकलूं, तब तक में तो पच्चीस लड़कों को पीट कर निकलता (था)।
स्कूल में जाएं, तो वहाँ भी सोटी पड़ती।

तब मैं पहलवान था। अभी भी मैं चार जनों को तो ठोक दूं।
स्वामी (बापा) के साथ (घूमते थे) तब एक बार लड़ाई भी हुई थी-
योगीजी महाराज के साथ (घूमते थे तब) – शूरवीर योद्धा!
तो, मुझे मेरे नड़ियाद वाले दादा कहते थे – 'हिसाब लिखो'।
दादा! नौ वर्ष की उम्र में हिसाब नहीं लिखा जाता।
बाबु! तू लिखता है और यह न करता है।
पप्पा खूब सीधे, जो कहो वो यस-यस।
और उनकी तबियत भी ऐसी कि
मेरी 'डोशी' माँ मुझे पालने से बाहर निकाल दे, मैं छोटा था तो भी –
और
उन्हें अंदर सुला दे। मैं देखता रहता कि यह क्या देख रहा हूँ?
अरे! पर मुझे सोने.....मुझे (और हँसते हैं व हँसते-हँसते बोलते हैं)
हक़ीक़त कहता हूँ आज –
आज अब टाईम दिया ही है, तो आनंद करें और क्या?
और
पप्पाजी तुम्हें दूधपाक और माल पूड़ा, काली – क्या? रोटी-सफेद दाल या क्या?
(सो, प.पू. पप्पाजी कहते हैं – काली रोटी, सफेद दाल।
वह प.पू. काकाजी रीपीट करते हैं।)
काली रोटी, सफेद दाल खिलाते हैं – बड़े भाई। सो जल्दबाजी है नहीं।
हाँ – तो फिर, मुझे मेरी डोशी पालने से निकाल देती और उन्हें वहाँ सुला देती।
मैं देखा करता कि क्या चल रहा है यह?
विराट दर्शन हुआ यह या ब्रह्मदर्शन?
हमने सोचा-चलो भई, जाने दो-बड़े भैया को आराम करने दो,
कोई बात नहीं। (प.पू. पप्पाजी हँसते हैं।)
और
मैं पत्थर जैसा।
कुछ टकराए करे-ईष्टं पिष्टं
हम दोनों का यह रवैया – अभी भी जारी रहा है। धन्यवाद!
सात साल की उम्र में पप्पाजी से कहा,
अक्षरधाम लाओ, असाधारण काम करें हम।

और
अब हरिप्रसादजी और अक्षरविहारी व साहेब जुड़ गए।
सच में, इन संतों के बारे में कुछ मनदुःख हो तो इतनी बात-
आज बहुत ही अच्छी तरह साक्षात्कार......
दीक्षा दिन के बाद का पहला दिन है, यह गुणातीत के दीक्षा दिन के बाद का–
ज़रा भी उदास नहीं होना। असंभव वस्तु–
बहनों का–असंभव में असंभव–
श्री अरविंद करना चाहते थे,
फकीरभाई को पता है।
इस काम में तो हमारी विजय हो चुकी।
यहाँ की बहनें,
दक्षा की बहनें तो, दो-चार बहनें ऐसी हैं, अभी भी-ओरिज़ीनल,
उनको तो स्वामिजी का सीधा कोई जोग हो नहीं सकता।
अंतर्यामी मान कर ही वर्तना पड़े।
ऐसी प्रवीणा के साथ एक दूसरी है–
वह जूनागढ़ वाली या वंथली (की)-लेकिन वो पूर्व के हैं-
इतना ख्याल रखना।
हमारा आज विश्वास करना।
हरिप्रसादस्वामिजी, पप्पाजी, काकाजी, अक्षरविहारीजी, साहेब–
इस केबिनेट की बात हो रही है–फाईनल।
तो, पहली बात यह है कि जैसे हम दो भाई
पहले से ही अक्षरधाम–स्वर्ग तो लाए–
लेकिन–
अक्षरधाम यानि–अंतःकरण की शांति और शुभ संकल्प।
कल (का) उत्सव पूरा हुआ।
मैंने सुबह ही स्वामी को कहा-
स्वामी ने भी कहा था कि हमारा सब कुछ निर्विघ्न पार उतर जाए।
मैंने कहा कि शायद कहीं आग लगे या कोई माथापच्ची खड़ी होगी;
एडवान्स एक सप्ताह पहले (मैं) आया तब-
मैंने प्रेमस्वामी को कहा था–तू वॉचमॅन ठीक रखना।

यहाँ ये गुंडे भी आएंगे व और सभी आएंगे,
लेकिन महाराज निर्विघ्न पार उतारेंगे।
धन्यवाद, योगीजी महाराज और शास्त्रीजी महाराज को–
कितना भव्य उत्सव? सिर्फ देखते ही उसके विचार बंद हो जाएं!
खाली ऐसे यूँ ही–ऐसे ही घूम कर यूँ जाए।
चीफ मिनिस्टर बोले–मुझे पूछे–वहाँ के और यहाँ में फर्क क्या?
मैंने कहा कि मैं एक सॅकण्ड में जवाब दूँ तो सच मानना, विचार भी नहीं करूँगा।
साक्षात्कार वाला पुरुष हूँ। देखो, कितने अधिक अभिमान की बात–नहीं?
कितनी अधिक? (सभी हँसते हैं।)
कृष्ण ने भी कहा-
'सर्वधर्मान् परित्यज्य-मामेकं' मेरे अकेले की (ही) शरण में आओ।
'अहं-अहं' जो छोड़ना, वह वे बोले।
अहं त्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामी मा शुचः।
मैं यह 'अहं' नहीं बोलता, लेकिन मेरे बाप का लड़का हूँ–
जिनका ही चलता है, जो सर्व सत्ताधीश हैं, सार्वभौम सत्ता–सहजानंदस्वामी की।
ये शास्त्रीजी महाराज, योगीजी महाराज के रूप में-राईट?
(प.पू. स्वामिजी बोलते हैं–राईट।)
राईट बोलते हैं।
(सभी ताली बजाते हैं और प.पू. काकाजी हँस कर कहते हैं।)–
और **मेरे वो बाप अभी इस सभा में हाजिर हैं, गए ही नहीं, गए ही नहीं।**
(सभी जोर से ताली बजाते हैं।)
हम उनके प्यारे लड़के हैं
ये ऊपर जो बैठे हैं, वे सभी।
हम सब धूमकेतु हैं।
धूमकेतु-यानि एक तारा नहीं, पूंछ वाला तारा-पुच्छल तारा।
सो, तुम कैसे कह पाओगे कि–एक ही-हरिप्रसादजी ही?
कोई कहेगा–पप्पाजी ही।
और कोई कहेगा–स्वामिजी ही,
कोई बोलेगा–अक्षरविहारीजी ही।
इस एक देशस्थ ज्ञान को सर्वदेशीयता में ले जाओ।

सर्वदेशीय–सर्वदेशीय।
वहाँ तुम्हारी दृष्टि पलटेगी।
पहले के सुंदरतम तत्त्वों-
और
नई–इक्कीसवीं सदी के रॉकेट टाईप के तत्त्व-
इन दोनों का हम समन्वय कर रहे हैं।
उसमें यह अंबरीष दीक्षा।
सो, कई बातें तुम्हें नहीं समझ आएंगी।
क्रांतिकारी युगधर्म
और
सनातन धर्म तो वैसा ही रहने वाला है।
ब्रह्म के निरुपण में फर्क पड़ेगा, तत्त्व में बिल्कुल फर्क नहीं पड़ेगा।
अक्षर और पुरुषोत्तम की यह युगल उपासना अखंडित रहने वाली है।
कोई महाराज हुआ नहीं, होगा (भी) नहीं। सहजानंदस्वामी ही हैं।
(इस बारे) हम सभी एकमत हैं।
और (तुम्हें 'महाराज') होना हो, तो हमें ज़रा भी हर्ज़ा नहीं-
मैं बापू को कहता हूँ कि तूझे होना हो तो, तू भी 'स्वरूप' हो जा।
(सभी हँसते हैं और प.पू. पप्पाजी कहते हैं–वह तो है ही, लेकिन)
लो? अब इन्होंने (उसे) डिक्लॅर किया फिर!
कांतिभाई अभी काट देंगे।
(उसे) कहेंगे कि-'है', तो थोड़ा कुछ हो–
हमारे पटेल, लुहाणा और सोनी–ये तीन,
उनके पास पाँच हज़ार रुपये हों, तो पचास हज़ार का दिखावा करें।
और
टोपी टेढ़ी रखें। भई ऐसा क्यों? तो, जोश आ गया होगा!
पूछो पोपटभाई को या रमेश को
और
बनिया हो–कांति देसाई जैसा,
पाँच लाख होंगे न? तब भी कहेगा–सूक्ष्म है। फटा कपड़ा पहनेगा।
इन्कम टैक्स ऑफिस में जाएगा तो (उसके कपड़ों में) छेद होंगे।

अरे! इतना ज्यादा? साहेब ये सब गलत बातें फैला रहे हैं।
मेरे पास तो खाने के लिए भी एक टाईम का ही है।
पाँच लाख हों (उसके पास)!
यूँ इसमें-**गुणातीत ज्ञान में धीरज खूब चाहिए।**
सुबह मैं बात कह रहा था; **महाराज के साधु अलग, गुणातीत के साधु अलग।**
कोठारी आए, प्रेमस्वामी–बेचारे,
सच में–उत्सव तो दो जनों ने किया।
दूसरे भी होंगे। हमारे माधवस्वामी!
मैंने कहा–अरे! फिल्म लेनी हो, तो यह लो न–वीडियो।
पंद्रह सौ बहनें तो सब्जी काट रही थीं।
कई कितने ही जने–यूँ कितने तो कड़ाहे चढ़े हुए थे।
मैंने ऐसा सारा सीन अटलादरा में देखा था।
दो हज़ार युवक थे।
कांग्रेस वाले के.के. शाह बोले थे कि-
ऐसी सेशन में हमसे इतनी शिस्त नहीं रखवाई जा सकती।
यहाँ भी तुम देखो,
गुणातीत ज्योत यानि–सारा शिस्तबद्ध काम!
मुझे शांतिभाई की इज़ाजत लेनी पड़े!
हाँ, उनके थ्रू ही जाया जाए।
पहले पूछना हो तो-अश्विनभाई को, शांतिभाई को, फिर साहेब।
फिर सुप्रीम कोर्ट पप्पा और बा की आए।
यदि हम सीधे पूछने गए तो, यहाँ इंग्लिश सिस्टीम है।
‘कम थ्रू प्रोपर चॅनल!’ (सभी हँसते हैं) ‘क्या? कम थ्रू प्रोपर चॅनल।’
(फिर खुद हँसते हैं।)
माफ करना, योगी परिवार है।
आज आनंद करने का दिन है। (पू. साहेब हँसते हैं।)
दूधपाक और मालपूड़ा खाने वाले हैं।
हमने एक कलश चढ़ा दिया–हरिप्रसादस्वामिजी ने।
हरिभक्तों ने जो कुछ सोना भेंट दिया–इसमें लग गया।
भगवान जाने। जो भी हो वह।

तो **अब, एक कलश चढ़ गया – राजा!**

दूसरे कलश की बात अब शुरू हुई, आज से, यूँ मानो।

वह कलश कौन-सा?

मैं कहता हूँ – **गुणातीत भावना वाले साधु बनो।**

स्वामी! हमें अब ऐसे साधु बनना है।

सो, यह उत्सव अच्छा निपट गया! हाँ, निपट गया।

लेकिन, मैं इसे अच्छा नहीं कहूँगा।

यूँ तो वहाँ भी मनाया। हम से दस गुना अधिक।

यहाँ 120 बीघे में आयोजन किया।

साथ-साथ किया, सब कुछ निर्विघ्न पार उतर गया।

हम भी जायन्ट व्हील लाए, फायन्ट व्हील लाए।

दीक्षा भी दी।

नारदजी ने एक घंटे में दस हज़ार साधु बनाए – दस हज़ार साधु!

लेकिन **महाराज बोले – मुझे वह रास नहीं आता।**

क्यों रास नहीं आए? क्योंकि उसमें भक्ति नहीं थी।

आज का सूत्र है-

प्रत्यक्ष की पराभक्ति, उसका पंचम पुरुषार्थ – तीन पप्पा।

प्रत्यक्ष की! प्रगट की उपासना तो है ही,

लेकिन प्रगट की उपासना में –

निष्कुळानंदस्वामी भी हैं और गोपाळानंदस्वामी भी हैं; संकल्प की बीमारी!

मैंने अश्विनभाई को वर्षों पहले कहा था – सांकरदा में,

अश्विनभाई अब **हमें संकल्प की बीमारी टालनी है।**

यह ब्रह्मविद्या की कॉलेज शुरू हो गई।

दूसरी बात – एक रुचि वाले दो हों, तो दो लाख-दो करोड़ के बराबर हों।

मैंने स्वामिजी को कहा – आज आप ज़रा सुरुचि का अर्थ समझाना।

पप्पाजी, मैं और साहेब भी – तीन एक होकर

जो कहें यह उच्च स्तरीय कैबिनेट-दो या तीन की

वह 'सूत्र' मानना।

स्वतंत्र भी है हर एक। स्वतंत्र-रॉकेट टाईप!

लेकिन समाज के लिए, **अब हमने कलश चढ़ाया, सो हमारी एक संस्था हुई।**

हमारे कोई 'रुल्स एन्ड रॅग्युलेशन्स' भी तो हों!
ये – मेरा, तुम्हारा या दूसरे का-रीजीयोनल है सब।
सभी प्राईम मिनिस्टर्स हैं।
अनुपम वाले भी प्राईम मिनिस्टर, योगी डिवाईन वाले भी प्राईम मिनिस्टर।
यह कोई शिखर परिषद हो न, वैसा है।
ऐसा है यह हमारा – रीजीयोनल, गुणातीत सभा में।
इसलिए मुझे वे पूछे – सत्यमित्रानंदगिरिजी कि
तुम्हारे यहाँ पीठाधीश कौन हैं?
वहाँ महंत है (न) वे – क्या नाम? 'प्रमुखस्वामी'।
मैंने कहा – **हमारे यहाँ जो ब्रह्मस्वरूप – गुणातीतस्वरूप में वर्ते, वही पीठाधीश।**
तो बोले यह कैसे?
मैंने पूछा – दिशाएँ कितनी?
तो बोले-चार। मैंने कहा – दस!
(फिर हँसते-हँसते कहते हैं।)
वे विचार में पड़ गए कि यह बड़ा अक्लवाला मिला!
(हँसते हैं-हा-हा-हा)
बहुत विचार में पड़ गए!
कुछ बात करने जाएं, वहाँ तो तुरंत ऐसा जवाब!
मैंने कहा, देखो भई –
हमारे-मेरे बाप ने लिखा है, इसलिए इसमें मैं शंका करता नहीं।
जोगी महाराज कभी सपने में भी झूठ बोले नहीं – राईट?
(सभी बोलते हैं-राईट)
कभी सपने में भी नहीं बोलेंगे।
हम शायद नमक-मिर्च डाल दें। मैं और स्वामिजी।
पप्पाजी नहीं डालें – शायद, हं – नहीं डालते होंगे।
लेकिन बहनों की बात आए तो, वे भी थोड़ा डालें, हं। थोड़ा तो डालें यार।
हम तो यहाँ-वहाँ
कोई भी भक्त हो, आज-कल का आया हुआ हो, पंजाब से आया हुआ हो,
तो भी डालेंगे।
मानो कि हम दो को यह हक़ दे ही दिया है कि तुम डाला ही करना-डाला ही करना।

पप्पाजी–किसी शर्त पर, कोई छुटकारा न हो-आपत्ति धर्म आ पड़े,
और
वह भी खास उनकी बहनों का–स्पेश्यल, मुझसे अधिक पक्ष–यानि?
खत्म हो गया–सी!
देखो, न बोलते हैं? 'न' बोल सकें ऐसा है?
(सभी हँसते हैं। खुद भी ताली बजा कर हँसते हैं।)
हाँ, जाहिर में सारी बात करता हूँ।
योगी परिवार है–योगी परिवार।
क्या बात चलती थी? दस दिशा।
वो सोच रहे थे–दस दिशा कैसे हुई?
मैंने कहा चार दिशा–उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम।
फिर उसके बीच में, उत्तर-पूर्व के बीच में एक आती है, एक आती है, एक आती है और
ऊपर व नीचे–लो, बोलो। यूँ दस दिशा!
इसी तरह, मैंने पूछा-
सौ में से सौ लो, फिर भी सौ बचें और सौ वापिस दिए जाएं;
यह गणित का पता है?
तो (वो) बोले–नहीं।
मैंने कहा कि–
यहाँ जितने गुणातीत स्वरूप में, महाराज को जितने अखंड रखें,
भगतजी, जागास्वामी और अदा थे या नहीं? तीनों ही पीठाधीश।
यदि एक-दूसरे का सहज भी तुम बोले,
भगतजी-जागास्वामी थे, जागास्वामी-भगतजी थे,
भगतजी-अदा थे, अदा भगतजी थे।
एक भूमिका–गुणातीतभावना की।
यह गुणातीत ज्ञान समझोगे, तभी भेदभावरहित-विरोधरहित
उस भूमिका में अब आज से हमें जाना है।
एक कलश चढ़ गया।
अब गुणातीत समाज की हमारी एक संस्था बनी।
और

हम दोनों भाइयों को–मुझे अब 68वां वर्ष जा रहा है,
जबकि मैं अपने आप को पच्चीस साल का मानता हूँ।
तुम मानो या न मानो, तुम जानो।
आज की तारीख में मैं अपने आपको मानता हूँ।
चार जनों को तो पीट दूँ। एक यूँ हाथ मारूँ, एक लात मारूँ, एक को यूँ करूँ।
फिर मुझे एक जना चाहिए, हॉस्पिटल ले जाने वाला–एम्ब्युलन्स....
(सभी हँसते हैं और खुद भी जोर से हँसते हैं।)
एक जना चाहिए यार।
तो भी, पूरी हिम्मत से–खतम, टोटल!
मेरे पास एक शब्द है–टोटल! टोटल!
क्या बात चल रही थी?
(सभी कहते हैं–दस दिशा।)
(खुद बोलते हैं)–दस दिशा,
(लेकिन फिर कहते हैं)–दस दिशा नहीं, **गुणातीतभावना।**
इससे पहले 'गुणातीत ज्ञान' समझना पड़ेगा।
हम एक धूमकेतु हैं।
हाँ, यह बात चल रही थी; भूल गए–तुम लोग।
हम दोनों भाई-
मुझे 68 साल हुए, हं! लेकिन एक्च्यूअली-क्वॉलिटेटीवली उम्र-
विनोबाभावे, गांधीजी, पंडित नेहरू-ये ऐसे पॉलिटिक्स में काम कर गए;
यहाँ शास्त्रीजी महाराज और योगीजी महाराज–
दातुन वहाँ दीया नहीं, दीया वहाँ दातुन नहीं।
ये स्वामिजी दो-ढाई बजे सोएं।
मैंने वो विनय (स्वामी) को पूछा–अरे, मालिश-वालिश?
बापू बोले–एकाध दिन-दो दिन कराया, लेकिन स्वामी आते ही (हैं) दो बजे।
तब तक तो हमने दो नींद ले ली हों!
उठते हैं कितने बजे? पाँच बजे-चार बजे!
और
कहीं के कहीं! दूसरे दिन तो हम ढीले हो जाएं।
तो, एक इन्द्रियाँ, अंतःकरण–

अक्षरविहारीस्वामिजी ने कहा न–
ये लोग-संतों ने जो काम किया है, तो एक बात पूरी हो गई अब।
अब यदि कसर रहती है–दूसरा या तीसरा रहता है,
तो वह हमारा है-गुणातीत समाज के ज्योतिर्धरों (का), तुम्हारा नहीं।
धन्यवाद है–साथीदारों को, हरिभक्तों को, बहनों को-
ज्योति बहन, तारा बहन, हँसा बहन, देवी बहन, झमकु बहन-फमकु बहन सभी (को)।
वर्ना तो-हम दोनों भाइयों को मार डालते।
कैसी अशक्य वस्तु-अशक्य वस्तु!
मेरी दृष्टि से, पप्पाजी ने अभी नया प्रकरण-मर्यादा का भी बहुत चलाया है।
मर्यादित, फिर भी अमर्यादित!
देखो, यहाँ कोई लाल कपड़ा दिखाई देता है-साधु(ओं) में, देखो?-बहनों।
फिर भी, सभी सुन सकते हैं।
तो, उनकी स्वतंत्र व्यवस्था अब कर सकते हैं।
एक स्त्री-पुरुष मर्यादा भी है।
फिर भी, सनातन धर्म की रीति से उन्हें भी इतना ही इक्वल अधिकार है।
यह एक व्यवस्था के लिए था।
लेकिन (तब) ऐसा वर्ग नहीं था,
सो, महाराज ने दीवार में वह आला भरवा दिया था।
अब भी हमें वह मर्यादा पूरी पालनी है।
ब्रह्मरूप में–ब्रह्मरूप में अक्षरधाम की यदि यह सभा मानो तो,
स्त्री-पुरुष भाव (यहाँ) कहाँ से आया?
और
यह दृष्टि अब विकसित हो रही है। यह सॅकन्ड शुरुआत हुई।
तो आज अब मेरा मंगलाचरण (यहाँ) पूरा होता है। अब मैं बात करता हूँ।
कोठारीस्वामी को मैंने कहा–प्रेमस्वामी को कि–
तुम्हें ऐसा साधु बनना है कि जहाँ मन का आभास भी न हो।
तुम ऐसा नहीं कह सकोगे कि तुम्हें मन का आभास नहीं।
सिद्ध होंगे, सर्वज्ञ होंगे, गोपाळानंद होंगे,
अष्टांगयोगी होंगे, सांख्य विचार वाले होंगे, तपस्वी होंगे,

करोड़ों लोगों को शायद सत्संग भी कराते होंगे,
लेकिन तुम अखंड ब्रह्मस्वरूप भाव में, कॉन्सियसनेस के योग से वर्त नहीं सकोगे।
हमें (मुझे), पप्पाजी को, हरिप्रसादस्वामिजी को,
फिर साहेब को – 'ठहरावरहित गुरुमुखी' वे वर्तें।
स्लॅब भरना था, तो भी कहें कि महाराज जानें-महाराज जानें।
अरे! लेकिन महाराज कैसे जानें? यहाँ सीमेन्ट नहीं है।
तो – वह भी महाराज जानें!
अरे! कल भंडारा करना है और कल ठाकुरजी को थाल लगाना है-
यहाँ कुछ है नहीं।
महाराज जानें-सब महाराज ही करेंगे।
ऐसी जो धीरज से – 'ठहरावरहित गुरुमुखी' की शुरुआत हुई,
तब जाकर, इस ब्रह्मविद्या की कॉलेज में एन्ट्री मिली है।
सो, क्या संकल्प की बीमारी पहले हमारी टली? वर्ना तो कनिष्ठ मुक्त हैं।
ब्रह्मरूप ही हैं, निर्दोषबुद्धि भी हैं, भगवान में जुड़े हुए भी हैं,
लेकिन हम भी? हैं!
वो हमारी मणीबहन को हम कई बार कहते –
पप्पाजी और हम दोनों ही – मणीबहन, (भीतर से) धर्मज गया?
मेरे बहनोई आए थे। यह फ्लॅट, हमने (उनसे) लिया था।
पप्पाजी बहुत ही-बहुत ही प्रखर (चुस्त) अडिग-स्वधर्म के राजा-अंतर्दृष्टि के।
हम और हरिप्रसादस्वामिजी दूसरी ओर,
एक अल्प संबंध वाला भी आया हो तो भी –
तू सर का ताज – यूँ भी वर्तना (पड़े)
और
वो कहे कि न भाई, स्वधर्मयुक्त व्यवहार करना हो तो (ही)!
सो-हम थोड़े फँस भी जाएं।
उसका छूतहा रोग भी लग जाए।
लेकिन, अब भगवान की दया कि सभी मिल कर करें, तो नहीं लगेगा।
माया परम सुखदायी। ऐसा हमारा कल का उत्सव हो गया। हक़ीक़त है।
लेकिन, बापा की रीत कोई अनोखी थी। ऐसा हम नहीं बरत पाएंगे।
छोटी से छोटी, भले कैसी ही हो, तो भी –

उन्होंने एक छोटी से छोटी आज्ञा भी पाली है।
इस जमाने में पाली नहीं जा सकती।
इसलिए हमने वर्णाश्रम धर्म में थोड़ी छूट रखी।
लेकिन, **एक ऐसा तरीका भी ला सकते हैं,**
जिससे किसी को भी-ज़रा भी तकलीफ न हो;
ऐसी व्यवस्था हम करना चाहते हैं-महाराज को रख कर।
और उसका एक सूत्र है-
सर्वदेशीयता और अखंड सद्भाव व सुहृद्भाव।
पाँच मिल कर करो, नहीं तो तीन–
ब्रह्मा, विष्णु, महेश – सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्।
अभी भी, प्रचलित कोई युगधर्म हमें बदलना हो-
जैसे कि हमने वर्णाश्रम धर्म को थोड़ा गौण किया है,
नहीं – खूब गौण किया है।
अकेले (हाथ) सिर्फ योगीजी महाराज और शास्त्रीजी महाराज कर सकते हैं।
युगधर्म – चाहे कैसा भी हो – वे बदल सकते हैं।
मुझे बापू ने कहा है –
देखो उन्होंने बहुत 'क्रांतिकारी'-
मैंने कहा – नहीं, यह क्रांतिकारी कदम नहीं उठाया उन्होंने।
क्रांतिकारी कदम में रिवोल्यूशन आएगा-कोम्युनिस्ट जैसा।
यहाँ कोम्युनिज़म नहीं है, यहाँ डॅमोक्रसी है।
और
इसमें क्रियेटिव माईनॉरिटी – दो या तीन,
याज्ञवल्कल स्मृति का दो सौ चौरासीवां या ऐसा श्लोक – उसके सारे पद हैं।
फिर आया अंबरीष दीक्षा का (कार्य)।
वैसे अब-ऐसे जो-जो भी क्रांतिकारी चेन्जिज़ करो-वो पाँच मिल कर (करो)।
एक संविधान है (हमारा), एक सुप्रीम कॉऊन्सिल है।
और
फिर दुनिया को जो कहना हो, भले कहे। हमारे लिए कोई जगत है नहीं।
क्योंकि हम दस दिशाओं से पर हैं।
इस गुरुत्वाकर्षण में ही नहीं – दिशा ही नहीं यहाँ।

और जो दिशा के पार – गुरुत्वाकर्षण के पार चला गया,
माया के आकर्षण से पार – टूँडी (नाभि) से ऊपर चला गया,
वहाँ फिर इच्छा नहीं, अपेक्षा नहीं, अहं नहीं; ये तीनों बातें नहीं हैं।
वहाँ क्या है? **धाम, धामी और मुक्त!** (भगवान, संत और सत्संगी-भगवदी)
अब हमारी बात आई – ब्रह्मरंध्र से परे, महाशून्य में।
वहाँ मन (जो) है-अकेला मन पार नहीं जा सकता।
(चाहे) मुक्त हों, फिर भी विपरीत परिस्थितियाँ बाधारूप बनेंगी।
बड़ों-बड़ों को बनी हैं।
भगतजी, जागास्वामी और अदा के (जो) शिष्य – परमशिष्य थे।
देखो, एक उदाहरण कहता हूँ आज।
झवेरीलाल – भगतजी के अनन्य (निजी कहे जाने वाले); राईट?
स्वामी, राईट – झवेरीलाल?
(स्वामिजी कहते हैं – राईट)
राईट, राईट।
हम, स्वामिजी, पप्पाजी (जो) कहें वह श्रुति कही जाए – हं।
श्रुति, 'स्मृति' नहीं – ध्यान रखना।
(यदि) अकेले करें (तो) वह श्रुति (भी)-स्मृति होगी।
वो झवेरीलाल के दिमाग़ में एक बार शेखी चढ़ी।
(भगतजी) नड़ियाद गए (होंगे); उस समय टाँगे वाला दो आने लेता था।
भगतजी, उसका (झवेरीलाल का) स्वरूप-गुरुहरि। अरे?
राईट हैन्ड कहा जाये। (मानो) फेफड़ा – एक ओर का।
तो, उसने कहा –
एक बार गए, दूसरी बार भगतजी महाराज गए नड़ियाद,
तीसरी बार गए – तो (झवेरीलाल) बोले कि – क्या मैं ही मिला हूँ?
अरे डफर! तू मुझे कह रहा है (यह)?
मैं ही मिला हूँ-यानि? तेरे बाप का है यह? **प्रागा प्रभु का है –**
ऐसा कहना पड़ा, भगतजी महाराज को।
देखो, सम्यक् प्रकार से – चौदह (प्रकरण) की इक्यावनवीं बात।
नहीं तो मारपीट कर-(प्रकरण) पहले की 337वीं –
ब्रह्मरूप करना ही है, सभी (को) एकांतिक करना ही है।

सभी को इस प्रकार के, एकांतिक धर्म में-गुणातीतभावना में ले ही जाना है।
तो, मार खा कर करना है या सुखी-दु:खी (रह कर) या सुख-सुख से?
आज सुख-सुख से करने की रीति शुरू होती है।
और इसी लिए हम कहते हैं–
दो ऐसे भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले, भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले
अलग-अलग प्रवाहों में मानने वाले–
अक्षरविहारीजी, स्वामिजी-किसी को भी,
और वह भी यदि एक रसरूप–पंजा! पंजा!
इसमें एक उंगली यूँ (टेढ़ी) होगी, तो फोर्स नहीं आएगा।
आख़िर तीन तो लो ही, कोई भी।
इससे–माया तुम्हें पराभव नहीं कर पाएगी।
तुम सक्रिय काम कर सकोगे।
तो सबसे पहली बात–ऐसे साधु होना है।
साधु के साधु–गुणातीत के साधु।
उसमें बहुत फर्क है।
उसमें सभी गुण होंगे, लेकिन तीन चाहिएँ–महाराज के साधु में।
स्वधर्मनिष्ठा, आत्मनिष्ठा, स्वरूपनिष्ठा-महाराज की उपासना के साथ।
उसमें–समता; पहले आएगी साधुता
साधुता यानि सहन करना।
दो-पाँच जनों का (भी) तुम सहन कर सकते हो क्या?
तुम्हारे भीतर में ही तुम्हारी एकता है क्या?
और ऐसी आत्मबुद्धि होगी, फिर प्रीति।
पहले सहन करना। **आपस-आपस का भी चला लेना।**
महाराज में से आए (महाराज की प्रेरणा हो) वह करने की बात तो बाद की है।
स्थितप्रज्ञ तो पहले होना ही पड़ेगा।
प्रज्ञा की स्थिरता, मन की शांति, चित्त की निर्मलता, बुद्धि की स्थिरता, ऋतंभरा प्रज्ञा!
वह हमारे भीतर में ही अभी नहीं (है)। गड़बड़ी हमारे अंदर ही है।
तो सबसे पहले–साधुता। साधु हुए सो–साधुता।
भई, ये साधु हैं या त्यागी?
त्यागी हो वह हकदावा रखेगा, त्यागी हो वह जल जैसा।

उसे – त्यागी को जो बात करो, उस रूप वह हो जाएगा।

उसे उलझन (बेचैनी) रहती है।

यदि तुम्हें किसी भी प्रकार की उलझन (बेचैनी) है, तो तुम त्यागी हो – साधु नहीं।

साधु, भगवान –

स्वामिजी ने बात करी न? कि – भगवान साधे, वह साधु।

साधु – सूर्य समान? साधु – गुणातीत, अक्षरब्रह्म का स्वरूप।

और महाराज तो पर के पर। अनंत सूर्यों के सूर्य।

यही बात, कल ही स्वामिजी ने भी कही कि तुम अपने आपको

अक्षर-ब्रह्मरूप मानो।

पप्पाजी कहते हैं – धामरूप अक्षर मानो।

गुणातीत ने कहा : पहले प्रकरण की 285-258, तीन जगह पर –

रमणीकभाई! तुम अक्षररूप हो-ब्रह्मरूप हो, निर्विकल्प निश्चय हो गया!

अरे बापा! तीन नंबर की चाय चाहिए – यह चाहिए;

गोरी-गोरी लड़कियों पर नज़र चली जाती है।

अभी कहता है – वो (मकई का) चिड़वा! हमारा मुकुंदजीवन,

(देखो) इतने सालों के बाद भी! विचार तो करो।

इतने वर्षों के बाद भी कहता है –

मुझे चिड़वा भी भाए और स्वरूप भी भाए, हं!

जैसी मीना कुमारी, वैसी देवी बहन भी उसे सरीखी क्या?

अरे बाप रे! यह कहाँ से अंदर भर गया?

चित्त तो ऐसा है-

अचित्यानंद ब्रह्मचारी और विद्यात्रानंद गए थे – भूले पड़ गए।

तो, हमारे यहाँ, ताड़देव में एक बाई आती है, **सब्जी बेचने वाली-**

ऐसे भोलेपन से बोलती है-बाबाजी, बाबाजी, उस ओर जाओ।

परंतु, बाबाजी तो बहुत नियम वाले-तो यूँ करे (मुँह फेर लें);

ओ बाई-बाई रास्ता बताओ, रास्ता बताओ।

अरे बाबाजी!

उसने वो चारे की गठरी सिर से नीचे उतारी,

फिर बोली –

बाबाजी! ज़रा (इधर) देखो तो बताऊँ न?

यहाँ चार रास्ते हैं।
मैं कहता हूँ–हमारे यहाँ–रायशी के यहाँ सात रास्ते हैं। वहाँ क्या करोगे?
दो जनों को पूछना पड़ेगा, (वर्ना) कहीं घोटाला हो जाए;
दो जनों को पूछना पड़ता है।
यहाँ तो अनंत रास्ते हैं। किस रास्ते से तुम चलोगे?
उसमें कोई (कुछ) कहेगा, तो वहाँ दूसरा कहेगा-अरे! यहाँ कहाँ फँसा? यूँ कर।
एक कहेगा कि आत्मनिष्ठा क्यों करता है? तू यही करना–यही बस है अब।
अरे! यह तो गुंबद है, यहाँ दर्शन करने की तुझे क्या जरूरत है?
ये तो पुतले हैं। इस गुंबद में महाराज के पुतले हैं।
(हमें) ये प्रगट स्वरूप मिल गए; अब छोड़ न, और सब।
बहुत प्रकार के शब्द आएंगे।
तब, तुम (यदि) महाराज में से आए पुरुष से जुड़े होंगे,
तो हर्जा नहीं आएगा–विज्ञानस्वामी की तरह।
शास्त्रीजी महाराज ने कहा था, फिर भी उन्होंने माना नहीं था।
(फिर) उसे महाराज ने प्रगट अनुभव करवाया।
आज भी, ज़रा-भी परेशानी, विक्षेप आए वहाँ-
जोगी महाराज, जोगी महाराज, जोगी महाराज।
हे बापा! आप प्रगट ही हो, मुझे प्रेरणा करो।
किसी का–इसमें किसी का भी कुछ चलेगा नहीं।
हमारा या दूसरे किसी का भी (नहीं चलेगा)।
और
बापा तुम्हें ज़रा भी गलत रास्ते पर बिल्कुल भटकने नहीं देंगे;
यह हमारा पहला अनुभव है।
आज साक्षात्कार के दिन–
मेरा जो एक साक्षात्कार–वह दृष्टा स्थापित हो जाने की बात नहीं है।
वह मन, बुद्धि, चित्त, अहं और प्राण का–
टोटल दिव्यता के रुपांतर का साक्षात्कार है–ज्ञान समाधि का साक्षात्कार है।
और
इसीलिए यह जंग खेली और उसमें विजयी-विजयी हुए।

एक कलश चढ़ गया।
सांकरदा में मैंने यह कहा था।
सब विरोध हुआ, तब बापा ने कहा–
भई! उसने (काकाजी ने) शास्त्रीजी महाराज को राजी किया है।
नंदाजी आए, गवर्नर आए।
तुम में से कई कितने तो उस वक्त नहीं होंगे।
तब मैंने सतुभाई को–ये फकीरभाई को कहा था,
भई! तुम सांईबाबा को मानते हो–ठीक है,
लेकिन (हमारे) यहाँ वृत्ति की निर्मूलता है। राईट?
हा-हा (हँसते हैं।)
तो आज धन्यवाद है।
अब तो पप्पाजी–और वे आशीर्वाद दें।
हमने एक नई जंग शुरू करी है।
साधुता, फिर समता।
मान-अपमान में एकता, सुख-दुःख में समभाव।
हानि में, वृद्धि में, जय में, पराजय में, स्त्री और पुरुष में-
एक प्राणवायु के ऊपर देह चलती है।
वह शक्ति और हम संकल्प!
प्रकृति-पुरुष से परे का यह ज्ञान।
ज्ञान यानि–स्वरूप।
ज्ञान यानि जानना नहीं–चार वेद से।
'ब्रह्मज्ञ'–पाँचवें वेद से शुरू होता है।
मेरे लिए, मुझे मिले हुए-
मेरे गुरुहरि में परात्पर ऐसे पुरुषोत्तमनारायण अखंड विराजमान हैं।
मेरे साक्षी रूप भगवान और बाहर प्रगट दिखता-
मूर्तिमान जो स्वरूप है वह–स्वरूपी को (महाराज को) रखे हुए हैं।
मेरे लिए वे स्वामिनारायण का मूर्तिमान स्वरूप हैं,
और
वे मेरी आत्मा में अखंड विराजमान हैं–तो साक्षीभेदन होगा।
साक्षीभेदन हुआ? तो मन रहेगा नहीं।

मन है? तो भेदा नहीं गया।
(यदि) सत्पुरुष पहुँचा हुआ नहीं होगा तो,
उसमें जुड़ा हुआ भी कहाँ का कहाँ नर्क में चला जाएगा–
यूँ कहते हैं।
कल स्वामी ने दो-चार बार यूँ कहा–
पॉईन्ट वन-वन-वन डिफेक्ट यदि गुणातीत स्वरूप में होगी, तो......
(प.पू. स्वामिजी बीच में बोले–
गुणातीत स्वरूप (में) नहीं, किसी संत में–)
प.पू. काकाजी ने पूछा-हं?
(तो प.पू. स्वामिजी फिर बोले–
'किसी साधु में' यूँ; गुणातीत स्वरूप में नहीं।)
क्या? क्या कह रहे हैं?
'किसी साधु में' –ऐसे कुछ दो-तीन बार स्वामी बोले–
पॉईन्ट ज़ीरो-ज़ीरो-ज़ीरो (कसर) होगी, तो 10-15 प्रतिशत उसके चेले में आएगी।
साधु की बात भी जाने दो,
हम गुणातीत स्वरूप में भी एक छींट (मात्र कसर) होगी,
तो चेले में 10-15 प्रतिशत आएगी।
और
यह गोपाळानंदस्वामी के ज्ञान की परंपरा नहीं चलती।
यह कोई मेरा अभाव-अवगुण नहीं, पर गुणातीत परंपरा-शुद्ध परंपरा है।
अक्षरपुरुषोत्तम की युगल उपासना की शुद्ध परंपरा है।
शास्त्रीजी महाराज और योगीजी महाराज को
डेढ़ सौ साल के बाद भी, भीख माँगनी पड़ी।
(मिट्टी के तेल के) डिब्बे में खिचड़ी पकानी पड़ी-सारंगपुर में।
चालीस वर्ष में–योगीजी महाराज का
एक दिन भी ऐसा नहीं गया जब अपमान सहन (नहीं) करना पड़ा हो।
वह विरासत आज हमें मिली है।
हमारी एक जिम्मेदारी आज से खूब-खूब बढ़ गई है।
खूब बढ़ी, देश-विदेश में।
काल, कर्म, माया, प्रकृति–स्वभाव से परे ब्रह्मतत्त्व-

जिसे स्थानभेद नहीं, कालभेद नहीं, मायाभेद नहीं, स्त्री-पुरुष भेद नहीं।
जहाँ देखो वहाँ – जहाँ देखो वहाँ-सभी में वासुदेव
निवास करे हुए ऐसे मेरे अक्षरब्रह्म – मेरा जोगी-जोगी महाराज, जोगी महाराज।
आज कोई स्वयं जोगी महाराज नहीं है।
लेकिन, **महाराज और स्वामी को रखे हुए,**
कोई भी हम दो जने मिल कर करें –
एक संस्था के रूप में काम बाहर आएगा।
स्वतंत्र भी हैं।
लेकिन, फिर अनादि महामुक्त के रूप में हमारी संपूर्ण जिम्मेदारी (बनती है)।
महाराज की पूरी-पूरी कन्सेन्ट मिली है क्या?
यदि मिली ही हो तो – वहाँ विरोध नहीं, विक्षेप नहीं, अंधेरा नहीं।
शांति, सुख, आनंद – उसका आनंदोत्सव है।
तो, ये सारी वस्तुएं -मुझे बहुत कुछ तो कहनी रही।
आज तो मुझे टाईम भी बहुत दिया।
मूल में अब, पूर्णाहुति करता हूँ, दो-पाँच मिनिट में।
जहाँ-जहाँ एक रुचि वाले – एक रुचि वाले दो या तीन मुक्त हों,
हमारे लिए – पहले प्रकरण की 336, चौथे प्रकरण की 107
और
181 बारहवें प्रकरण की –
इन तीनों बातों के मुताबिक –
ऐसे दो, एक रुचि वाले दो भी हों, तो दो लाख;
सुरुचि (वाले) हों, तो दो करोड़!
कैसे तुम तोल लगाओगे?
वह तराजू – बोरियाँ तोलने का; दो किलो वजन तो वैसे ही कम – ज्यादा होता है।
यह हीरा नापने की (तोलने की) स्केल है।
आज नारायणी सेना इतनी बढ़ी, इतनी बहनें बढ़ीं,
इतने पार्षद बढ़े, इतने अंबरीष दीक्षा वाले बढ़े।
यह सारी नारायणी सेना है।
ऐसे दो-एक रुचि वाले; एक रुचि वाले यानि क्या?
वह **पप्पाजी और स्वामिजी तुम्हें ठीक से समझाएंगे – वह मान्य करना।**

मेरा (किया) अर्थ शायद तुम्हें नहीं जँचेगा। बुरा भी लग जाएगा।
क्योंकि? मर कर भीतर में जाना पड़े–इसलिए!
(और) मरने के लिए हम एकदम तैयार नहीं हैं।
थोड़ी-थोड़ी (प्राण की भूख) टिकनें दें–ऐसा है।
तो, निर्गुणभाव में रह कर करो–दुर्वासा की तरह।
हमारा नौकार मंत्र पाँच को साथ में लेकर करो।
मू.अ.मू. गुणातीतानंदस्वामिजी ने कहा है–
यदि मेरी अकेले की महिमा गाओगे, तो मेरी अपकीर्ति कराओगे।
अकेले हाथ यह नहीं बना; ज्योत भी अकेले हाथ नहीं बनी।
योगी डिवाईन सोसाईटी का यह उत्सव हुआ, वह भी अकेले हाथ नहीं हुआ।
प्रेरणा तो बापा की और महाराज की। **स्वामिजी टोटल निमित्त बने हैं।**
हम 68 वर्ष में–रिटायर जैसे।
पप्पाजी ख़ुद भी कहते हैं।
आज ऐसे वारिसदार-
हरिप्रसादजी, अक्षरविहारीजी, साहेब, हरिभाई–ये लोग,
हमारे यहाँ दिनकरभाई जैसे-
इन सभी के लिए हम उमंगभरे दिल से चाहते हैं–
अहो! तुम हाथी पर बैठ कर बापा का संदेशा फैलाओ।
हम रिटायर, रिटायर यानि–उस प्रकार से नहीं,
लेकिन एक्टिवली काम तुम करो।
हम एक फाईनल-आकाश में (से) नेपथ्य में से-देने वाले-
एडवाईज़री पॉलिसी के अंदर कुछ चलता रहता हो,
बवंडर आने वाला हो,
तो हम सूचित करेंगे–भई, यह बवंडर आ रहा है।
आप ज़रा ऐसी प्रोटेक्शन रखना।
वहाँ रखना है-सुहृद्भाव, सद्भाव-सुहृद्भाव।
कोई भी (दो) पाँच जने
भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले, अलग-अलग, प्रकृति वाले (हों),
लेकिन (यदि) एक रुचि वाले होकर निर्णय लोगे,
माया (से) कभी भी पराजित नहीं होओगे।

उसकी आज (की)-यह साक्षात्कार दिन या ज्ञान समाधि का साक्षात्कार-
जो कहो वह (यह चाबी-भेंट)।
पाँच भेद में काम करना बहुत मुश्किल है।
चाहे कैसी ही स्थिति को पहुँचे होंगे-ब्राह्मीस्थिति होगी,
मंदिर में रहते होंगे, तुम्हारी रुचि वाले मंडल में रहते होंगे,
कोई विरोध नहीं करेगा; लेकिन बाहर निकलो।
एक जन गया था – स्वामी जानते हैं।
और वहाँ गए – अमेरिका में; पता नहीं कोई गाँव था-
मुझे ऐसी रिपोर्ट मिली थी।
'क्यों आए हो? क्या है?'
इतना अंट-शंट बोलने लगा, इतना अधिक बोलने लगा।
स्वामी बोले – अब क्या करें यहाँ?
आए हैं तो उसके घर! ऐसा कुछ था-भगवान जाने।
लेकिन स्वामी घूँट पी गए। उसे समझाएं भी क्या?
मैं मानता हूँ – मामा का कोई रिश्तेदार या ऐसा ही कोई था।
ऐसा तो बापा का पल-पल अपमान हुआ है।
उन्हें केरिया गाँव में फेंक दिया था-मंदिर में से।
अरे, शाम तक तो तू रहने दे।
नहीं, तुम विद्रोही हो।
बापा तो बोले नहीं।
इसका महाराज पहले भला करना।
यह मुझे दुश्मन जैसा (समझता है पर)-
मेरे लिए तो कोई दुश्मन है नहीं, कुसंगी से भी मुझे द्वेष नहीं रखना।
लेकिन समझना तो पड़ेगा ही।
शायद कई बार जो मैं कहता हूँ, समझने के लिए कहता हूँ।
तो, प्राप्ति तो बहुत बड़ी (हुई) है।
साधु यानि – गुण से परे होना ही पड़ेगा।
सिद्ध हों, सर्वज्ञ हों, गोपाळानंद हों तो भी –
संकल्प की बीमारी – हीन कक्षा के भी रहो या नहीं, ऐश्वर्य-प्रताप जुलूसों में।
आज धन्य है पप्पाजी को कि हमें किसी भी-कोई भी बड़प्पन की पड़ी नहीं –

क्योंकि सारा देख लिया है।

लेकिन, **एक बड़प्पन है – साधुता का।**

ओहो हो! हमारा निष्कामजीवन है – हमारे सांकरदा (में)-तुम देखो-

उस औलिया को।

उसे यदि परेशान किया – महंत को परेशान किया,

तो सारा कमाया करा खत्म हो जाएगा।

यह योगीजी महाराज बोले हैं – तीर्थगीता में।

शास्त्रीजी महाराज की चाहे कितनी ही सेवा करी होगी;

लेकिन योगीजी महाराज के दिल को सहज ज़रा भी दुःखी किया,

तो सब कुछ गँवा दोगे।

आज हरिप्रसादस्वामिजी की-पप्पाजी की चाहे कितनी भी सेवा की होगी,

लेकिन उनके मिले – कोठारी और प्रेमस्वामी जैसे का

तुम ज़रा भी दिल दुःखाओगे ,

(तो) करा (हुआ) सब खत्म हो जाएगा।

भले मेरी बात मानी जाए या नहीं मानी जाए,

पर तुम दूधपाक और मालपूड़ा जरूर खाना।

लेकिन यह एक हक़ीक़त बता रहा हूँ।

अब इस प्रकार की-

दोबारा हमें सॅकन्ड लाईन ऑफ लीडरशिप की एक शिविर करनी है।

उस शिविर में ये (बातें) आएंगी।

आज हमें, स्वामिजी को या पप्पाजी को कोई फर्क नहीं है।

साहेब जैसों की शोभायात्रा निकालो, तो भी हमें खूब खुशी है।

मैंने कहा – बापू , तुझे भी (हाथी पर) चढ़ जाना हो, तो चढ़ जा।

लेकिन हाथी पर बैठ कर यदि (मान में) झूला-तो,

ओहो! मुझे फिर जैसे गधा मिला (था);

बापा के साथ मुझे भी इन लोगों ने गलत चढ़ा दिया था – ऊपर।

तो, मैं तो खूब खुश हुआ।

और

फिर सबको दिखाने लगा कि देखो मैं हाथी पर बैठा हूँ ;

ओ, अंबुभाई कैसे हो? ठीक हो?

कहने का मतलब कि – देखो अंबुभाई, मुझे देखो, मैं हाथी पर बैठा हूँ।
बड़ौदा में सवारी निकली थी।
वो छगनभाई – छगन नारण हम से सात सौ रुपए तनख्वाह लेता था।
पैसे के कारण मुझे 'छोटा योगी' कहता।
और
मुझे ऊपर चढ़ा दिया – पकड़ कर। मुझे बैठना नहीं था।
मैं जानता था कि (यदि) ऊपर बैठे, तो फिर नीचे गिरना ही है।
अभी हम इम्यून नहीं हुए-रॉकेट टाईप,
कि
वहाँ से जाकर वापिस आएं – ऐसा।
इस हेतु तो मूर्ति में अखंड ही रहना पड़े।
तो, यूँ बैठा-
वहाँ तो हर्षदभाई और उन्हें तो ऐसा –
ब्राह्मण होता है न? उसकी आँख में ज़हर होता है।
वह लाल-लाल हो गया कि –
(इसका) हकदार मैं-ट्रस्टी; मणीभाई सलाडवाले को (भी) नहीं बिठाया!
क्योंकि – छगनभाई को उस समय मुझ से स्वार्थ था।
तो पकड़ कर बिठा दिया, फकीरभाई।
और एक दूसरा कोई था,
बेचरकाका को बिठाया-हं! हम दोनों को।
और मैं खुशी से फूला नहीं समाया। मैं भी तो चढ़ गया आरे पर!
ऊपर चढ़ा, सो फिर भूल गया नीचे का सब।
ऊपर चढ़ा, सो फिर जो आए-देखे, तो-
ओहो, मंगलभाई कैसे हो?
रावजीभाई, वो हमारा एजेन्ट-बड़ौदा वाला-फर्टिलाईज़र का!
(वह) तो, अभी पांडुरंग में बहुत काम कर रहा है।
क्यों रावजीभाई?
मतलब कि तुम मुझे देखो – मैं हाथी पर बैठा हूँ।
पर, पता नहीं था कि हाथी पर बैठो तो –
बापा गधे को (तुरंत तैयार) रखते हैं – गुणातीत ज्ञान में।

यह महाराज का ज्ञान नहीं कि
वहाँ धर्मपुर में शोभा यात्रा में हाथी पर चढ़े,
और
गुणातीत (मू.अ.मू. गुणातीतानंदस्वामी) आए, तब भी वह मूर्ख नीचे उतरा नहीं।
स्वामी जैसे आएं तब तो उतरना चाहिए? हं!
तो मुकुंदजीवन कहता था-कहाँ मुकुंदजीवन?
और वह भी फिर 'बड़े मियाँ' होकर घूमे! तो, हड्डियाँ भी साबुत नहीं रहें।
बड़े मियाँ होकर घूमना, यह कोई खाने का खेल है?
तो, मूर्ति में रहना पड़े।
ऐसी प्रसन्नता प्राप्त कर लेनी चाहिए।
(हाँ) उसकी आज्ञा हो कि – जाओ तुम करो, तो हर्जा नहीं आएगा।
यह एकता हमें स्थापित करनी है।
पंजाब में भी, उत्तम और मुकुंद एक ही प्लॅटफार्म पर (काम करें)।
पप्पाजी पहले भी कहते थे –
हे महापुरुषस्वामी! तुम अक्षरविहारीजी और पाँच संत –
हे कोठारी और प्रेमस्वामी! यदि पाँच मिल कर करोगे;
तो, मूसल में से संगीत निकलेगा।
तो, गधे की गाय हो जाएगी।
तो, केक्टस को केले आएंगे।
अभी तक हम यह नहीं कर पाए हैं।
बड़े से बड़ी मिस्टेक (गलती)-भूल हो, तो वह हमारी।
सबसे पहली इस साक्षात्कार के दिन – दादुकाका की।
मुझे – मैं शूरवीर योद्धा हूँ, किसी की मोहब्बत की पड़ी नहीं।
बापू जैसे चेलों की भी नहीं पड़ी; वह न हो तो भी पाँच पोटले उठा सकता हूँ।
सो, मुझे उसकी बातों में आने की बिल्कुल जरूरत नहीं।
कुछ भी हो, एक प्रतिशत भी नहीं।
सो, महाराज यानि – एक महाराज।
लेकिन सच में हमें ऐसा बल मिले, हम ऐसी सेवा-
सेवक के सेवक –
स्वामी ने कल कितने अच्छे सूत्र कहे?

अभी हम पूर्ण नहीं हैं।
पर जो मिले हैं वे-पूर्ण नहीं, बल्कि संपूर्ण हैं – जोगी महाराज!
और हम पूर्ण होने का प्रयत्न कर रहे हैं।
तो,
जहाँ पूर्णता हो, वहाँ आनंद होगा, वहाँ शांति होगी।
वहाँ पीस ऑफ माईन्ड नहीं, 'इटर्नल काम'-एक अंग्रेजी शब्द देखना।
उसमें से एक आनंद।
आनंद से अधिक – आनंदब्रह्म से भी (अधिक), एक 'सनातन ब्रह्म' विशिष्ट है।
उसका नाम – सहजावस्था।
सहजानंद की सहजावस्था की कॉन्सियसनेस,
कृष्ण कॉन्सियसनेस नहीं; यह (है) अक्षरब्रह्म की कॉन्सियसनेस की बात।
(जो) आज तो बहुत कर दी – बहुत समझे।
तुम – **काकाजी, पप्पाजी, स्वामिजी (की) इस कैबिनेट में**
(चाहे) भले जो भी ठान ली हो, (तब) भी पड़ना नहीं।
(हाँ - हाँ) देखे (तुम्हारे) हरिभाई, देखे तुम्हारे साहेब,
देखे पप्पा - काका – 'गृहस्थी'
यूँ बिल्कुल मानना नहीं।
मानो तो भगवान तुम्हारा भला करें-बहुत भला करें पहले,
क्योंकि मैं जानता हूँ कि हड्डियाँ भी नहीं बचेंगी।
तो, **यह बात (खूब) समझने जैसी है।**
बड़े पुरुषों में बिल्कुल पड़ने जैसा नहीं, बिल्कुल नहीं पड़ना।
बापा को तो सत्य मानते हो न?
हाँ कहते हो तो समझो – 'हाँ' – यानि क्या?
ऊपर – ऊपर से 'हाँ' नहीं।
अति बड़े पुरुष में –
मुझे तो निर्दोषबुद्धि का राजा कहा है।
पप्पाजी का भी बड़प्पन मैं समझता हूँ।
उनकी तरह संकल्परहित, मुझ से अभी वर्ता (नहीं) जाता।
हम जल्दबाजी कर देते हैं। दया आ जाती है।
दया, लगाव और प्रीति भी बंधनकारी–

भरतजी (जड़भरत) जैसी! दया, लगाव और प्रीति भी नहीं।

महाराज जो प्रेरणा करें-महाराज में से आए, वही करना है।

मेरे इक्यावन भूतों का कब्जा तू ले ले - कंट्रोल।

और **ऐसे वर्तने वाले दो जनों के साथ,**

उनके (स्वरूप के) मिले हुए व प्रसन्नता वालों के साथ -

ऐसे हमारे बड़ौदा के भगतजी - जो सब (हक़ीक़तें) जानते हैं।

जागास्वामी की बात के समय मुझे ले गए थे – ये रमणभाई।

और वहाँ अपमान हुआ, (हमें) बुलाया नहीं।

उन्हें बुरा लगा।

मैंने कहा – नहीं, ये तो हमारे लिए साधु के आभूषण हैं।

हमें बिल्कुल नहीं लगेगा - रमणभाई।

और अब एक दिन हमारा डंका ऐसा बजेगा क्योंकि हमें विरोध कोई है नहीं – हमें।

वे उनका पुण्य हमें देने वाले हैं।

तो,

प्राईम मिनिस्टर मुझे पूछता है-वह चीफ़ मिनिस्टर –

तुम्हारे वहाँ की भी सभा बहुत बड़ी और यहाँ की भी, फर्क क्या है (दोनों में) ?

मैंने कहा – हम किसी की टीका-चर्चा की बात (बुराई) नहीं करेंगे।

और जो हमारा विरोध करते लगें, हम उसका पहले भला चाहेंगे।

यह हमारी गुणातीत परंपरा है।

और

वह भावना हम संपूर्ण नहीं कर पाए हों, पर जरूर करेंगे-जरूर करेंगे।

उसमें हमें किसी की मोहब्बत नहीं।

हमें शास्त्रीजी महाराज और योगीजी महाराज की शान बढ़ानी है।

तुमने हमें खूब-खूब सहकार दिया-बहनों, भाइयों सबने।

देश-विदेश में और सभी जगह।

हमें एकत्वभाव से-एकता ?

एकता, ऊपर-ऊपर की नहीं!

तो समता ?

तो समता यानि – एक-दूसरे का सह लो।

दो-तीन आपस-आपस में भी, भेदभाव नहीं।

तो संवादिता!

यह आज का सूत्र है।

महाराज और स्वामी खूब-खूब बल दें, खूब सूझ दें।

आज से नए जन्म के रूप में –

हरिप्रसादस्वामिजी को अकेले में –

चार कान में पूछना, पाँच मिनिट प्रार्थना करके।

दयालु! आप क्या प्रेरणा दे रहे हो, वैसा ही जीना है।

तुम्हारी मान्यता (के मुताबिक) नहीं-मान्यता (के मुताबिक) नहीं।

हमारे वो, एक थे-खेंगारजीभाई,

उसे शादी करनी थी।

तो कोई दो जनों ने मना किया-चंपकभाई सेठ ने

कि अब शादी नहीं करनी चाहिए।

तुम्हें सोलह साल का तो लड़का है – वजुभाई सेठ की तरह।

लेकिन, उसने (पहले से ही) सोच रखा था-प्रिकन्डीशनिंग।

शास्त्रीजी महाराज को पूछने गया – बापा! यूँ (अब) शादी कर सकता हूँ?

तो बोले – चालीस वर्ष के अंदर हो, तो कर सकते हो, वर्ना तो नहीं।

अब, चालीस साल पूरे होने में तीन ही दिन बाकी थे।

सो, उसने क्या किया?

एकदम साबरकांठा जाकर किसी को कहा –

कल ही कल में शादी का पक्का करवा दो।

क्योंकि – दूसरे दिन से ग्रहण लग रहा है-फिर बाद में धनारक लग जाते हैं।

फिर उसी दिन, उसे बुला कर कहता है –

मुझ पर शास्त्रीजी महाराज की बड़ी कृपा है

और

अनुग्रह कि ‘आई हॅव ट्वॅल्व चिल्ड्रन’!

ऐसी प्रसन्नता हमें नहीं चाहिए।

आप महामुक्त हो या जो कुछ (भी) हो,

कनिष्ठ में से मध्यम में जाने के लिए एक ही सूत्र है।

कनिष्ठ मुक्त में से, पप्पाजी ने जैसे पूछा कि –

मध्यम में – ब्रह्मस्वरूप होने में –

(जिसे) तुम 'स्वरूप' मानते हो, उसके मिले हुए कोई भी दो जने,
तुम, जिसे स्वरूप मानो – मानना ही पड़ेगा।
हरिप्रसादजी, पप्पाजी, काकाजी, स्वामिजी – किसी को भी मानते हो,
उसमें रहे महाराज – स्वामिनारायण –
जोगी महाराज सर्वोपरि – जोगी महाराज सर्वोपरि, शास्त्री महाराज - महाराज!
वो गुरुहरि में, गुरु (ने) अखंड हरि को रखा है – इसलिए।
वो गुरुहरि को मिले हुए दो जने होंगे।
अभी हरिप्रसादस्वामिजी को तत्त्व से – जैसे हैं वैसे पहचानने हों –
यह गुणातीत का वचन है –
तो रमणभाई जैसे भगतराज हों, ऐसे कोठारी-प्रेमस्वामी हैं।
यदि तुम उनका समागम करोगे और उनके प्रति दिव्यभाव रखोगे,
तो उनके अनुग्रह से – उनके खुश होने से प्रसन्नता प्राप्त होगी।
यह अनुग्रह से भी बढ़ कर है।
तो तुम तत्काल-तत्काल यानि तत्काल।
मध्य 7 और मध्य 63 – मध्य 7 और मध्य 63।
अति सेवा, यानि कि – मनमानी छोड़ दो, टोटल-टोटल-टोटल।
(प्रभु!) तुझ में से आए, वही करना है।
व्यक्त, फिर दूसरी बार प्रार्थना; तीसरी बार सूझेगा – अनुवृत्ति प्रगटेगी।
ब्रह्मनियंत्रित समाज है, उसकी सूझ पड़ जाए।
दोबारा मिलें, तब इस संदर्भ में,
जो सच में सॅकन्ड लाईन ऑफ लीडरशीप में सिलॅक्टेड हों ऐसे,
हम इकट्ठे होकर, चैतन्य भूमिका में ही अखंड रहकर-
'जहाँ देखें वहाँ रामजी' वाला कार्य करना है।
हमारी पूर्ण विजय है – अभी (केवल) विजय है।
दूसरा कलश सुहृद्भाव का-
बापा की जयंती – फिर शताब्दी मनाई जाए (तब)
इसी तरह ही हर एक इकट्ठे होकर - मिलजुल कर
देश-विदेश में सभी जगह, इस लोक में और परलोक में भी सभी जगह-
सभी महामुक्त आएंगे।
बापा (शास्त्रीजी महाराज) भी कहते – दूसरे साधु में - दूसरी जगह चौंसठ लक्षण;

ये जोगी में पैंसठ हैं – ये जोगी में पैंसठ।
मैं भी उसके पास हार जाऊँ।
महाराज कहते – मैं चिंतामणि,
तुम भी चिंतामणि; भगवान सिद्ध करो।
लेकिन, **यह गुणातीत परम चिंतामणि!**
वह आपको परम तत्त्व की पहचान कराएगा।
मुश्किलें बिल्कुल हावी नहीं होंगी।
महाराज और स्वामी-ऐसे एकत्वभाव से –
पाँच मिल कर – भेदभाव नहीं
और
कोई भी भक्त की टीका-चर्चा में बिल्कुल नहीं पड़ना –
बिल्कुल नहीं-(उन्हें) मिला हुआ और प्रसन्नता वाला।
तो, तुम तीसरे में से – कनिष्ठ में से मध्यम में आ जाओगे।
आख़िर तुम भी स्वरूप हो जाओगे।
बापा का संकल्प – सभी को बनाने का;
तुम भी ऐसे हो जाओ, हमें ईर्ष्या नहीं है।
पप्पाजी और हम अब ऐसे रिटायर में – नेपथ्य में जाएंगे।
धन्य-धन्य योगी तुम्हें – करोड़ों वंदन हों, तुम्हें धन्य!
भेदभाव में पड़ना नहीं,
कि यह बड़ा और वह छोटा।
यहाँ छोटे से छोटा, वह बड़ा। यहाँ बड़े से बड़ा (अपने आपको माने) वह मरा।
छोटे से छोटा, सेवक का सेवक झुकता रहे।
दो-पाँच जनों के साथ तो सेवकभाव से वर्त कर देखो।
तो तुम भी स्वरूप हो जाओगे।
महाराज और स्वामी-
आज मुझे बहुत उमंग है, वाह-वाह! इतना भाव!
एक-एक जन, एक-एक लाख के बराबर हो।
कितने लाख की सभा हुई?
समझदार!
तो महाराज और स्वामी खूब-खूब बल दें।

मेरे बोलने में हमेशा ऑथेन्टीसिटी होगी,
मेरे बोलने में सिंह की गर्जना ही होगी।
क्योंकि – मैं गीदड़ का बच्चा नहीं, मैं सिंह का ही बच्चा हूँ।
और
ऐसे प्रमाणित सिंह – **हम सभी इकट्ठे होकर काम करें।**
कुछ भी कमी हो, कुछ भी परेशानी आए,
तो दो – पाँच मिल कर प्रार्थना करेंगे।
तुमने कुछ भी युगधर्म बदला हो,
तो सनातन धर्म – उसकी सिद्धि यहाँ पर ही है।
निर्मलस्वामिजी और उन्हें भी यहाँ इसलिए ही भेजा है।
निर्दोषबुद्धि-निर्दोषबुद्धि और सुहृद्भाव।
संप, सुहृद्भाव और एकता, गुणातीत ज्ञान का नवनीत-
वह निर्दोषबुद्धि सभी को आसानी से दृढ़ हो जाए,
यही गुरुचरणों में प्रार्थना।
बोला – करा माफ करना, बोला – करा माफ करना।
मुझे ऑथेन्टिक बात करने की खूब आदत है।
मेरे दिल में इतना ही है कि जिनके लिए बोला हूँ,
उनके लिए खूब-खूब मैं प्रार्थना करूँ।
महाराज सभी को सूझ देना – यही प्रार्थना।
जय स्वामिनारायण!

❀ ❀ ❀

दिल्ली और पंजाब से आए मुक्तों के लिए प.पू. काकाजी द्वारा हिन्दी में बरसाए आशीर्वाद

(आज जो) बातचीत करी.....हिन्दी – पंजाब से जो आए हैं
वे समझ नहीं पाए होंगे।
(क्योंकि वो गुजराती भाषा समझे नहीं होंगे।)
आज हम तीनों ही और इस प्लॅटफार्म पर बैठने वाले सभी में से
बापा ही बोल गए हैं।

हरिप्रसादस्वामिजी ने जो कहा –
हमारा धूमकेतु का (एक) मुकुटमणी है यह, धूमकेतु है;
सो, इसमें बुद्धि को बिल्कुल नहीं लगाना।
बुद्धि इसलिए नहीं लगानी कि
आप लोगों ने पक्का मान लिया है कि इन लोगों (गुणातीत स्वरूपों) (को)
हमने एक्सेप्ट कर लिया है
और
हमने भी आपको एक्सेप्ट कर लिया है। अब सुख-सुख से करो।
महाराज के समय पर एक मुसलमान था।
ब्रह्मानंदस्वामी को उसकी क्रिया पसंद नहीं आती थी।
तो, वो महाराज से बोले –
महाराज, एक दिन मुझे अधिकार दे दो, मैं ज़रा आज (सारा) कारोबार करूँ।
सब को मैं खाना दूँगा।
तो, महाराज तो जानते थे कि
यह ब्रह्मभट्ट क्या (करने वाला है) – बारोट ?
निष्कामधर्म का राजा-ब्रह्मानंदस्वामी, यति जैसे, हं!
भीष्म पितामह से भी परे-ऐसे।
लेकिन, गुणातीत को नहीं पहचाना-इसलिए महाराज में थोड़ा - सा मनुष्यभाव
और
मुक्तानंदस्वामी (को) भी साथ में ले पड़ा था।
सो, महाराज बोले – इसमें ठीक नहीं है।
तो कहने लगा – नहीं, नहीं ! विष्णु को सबका पालन करने का
जो अधिकार दिया है - वो अधिकार आज मुझे दे दो।
आख़िर महाराज बोले-तथास्तु!
तो, (उसने एक) मुसलमान को – विष्णु भगवान के अधिकार से खाना नहीं दिया।
वो बोला, रे अल्ला-अल्ला! अरे! महाराज-महाराज आप जहाँ भी हो, प्रगट होओ।
फिर दूसरे दिन महाराज बोले – भई! अधिकार वापिस लाओ।
क्यों ? सात दिन के लिए कहा था न!
अरे भई! तुमने (वो) मुसलमान को क्यों खाना नहीं दिया ?
(ब्रह्मानंदस्वामी) बोले – वह कुसंगी है।

उस समय महाराज ने ये लिखा है।
यह बात शास्त्रीजी महाराज ने बताई थी।
हम दो थे, दस साधु व सभा में हम दो!
मैं और हर्षदभाई!
वो साढ़े नौ बजे आए।
और यहाँ बुआ है-मणीबुआ है, वो सभा में आती थीं।
पैंतालिस बार सत्संगी जीवन की परायण करने के बाद,
महाराज कहते हैं कि (भले) ये कुसंगी है, पर तुमने क्यों फर्क किया?
वो सभा में आया है न? ये मेरी सभा में आया है न?
तो, यह सूत्र महाराज ने इसलिए लिखा है,
यह शास्त्रीजी महाराज ने बताया था।
मैंने एक दिन पूछा – शास्त्रीजी महाराज!
मेरी माँ का कुछ दान पुण्य कर लें – दीवालीबा उनका नाम था।
तो हम दो (जनें) सत्संग में
और
हमारा यह ज्ञानस्वरूप – इधर आया है-वो।
वो जल्दी-जल्दी आ जाता।
तो बोला-भई! यह छः-सात बजे आता है, हं।
(तुम) ज़रा जल्दी तो आओ भई – काकाजी को बोलो, दादुभाई को बोलो –
उस समय (दादुभाई) बोलते थे।
हम बैठे (रहते) हैं – ऐसे दस!
शास्त्रीजी महाराज; योगीजी महाराज पढ़ते और वो (शास्त्रीजी महाराज) समझाते।
वो बोला –
ये सारी बातचीत, भगतजी-जागास्वामी के अंग की – आप लोगों के लिए है।
कोई समझता नहीं था।
तो, उस समय मैंने पूछा – ये वेदरस क्यों नहीं पढ़ते?
बोले – वेदरस में अहम् के ऊपर चोट है।
आज हरिप्रसादस्वामिजी ने भी जो कहा –
वह आप सबकी ओर से साक्षी बन कर, आपके लिए बोला है।
यह गुणातीत ज्ञान की हमारी प्रणालिका है; नम्रता से, सरलता से।

लेकिन आप दिमाग़ मत लगाना।

और

ये संत लोग – जो उनके वचन से हुए हैं, वो भी मत समझना कि

उनमें (कोई) डिफेक्ट है और ये हैं।

यह एक हमारी-हमारी यह एक रीति है।

महाराज ने भी (गुरु) रामानंदस्वामी की नौ महीने तक सेवा करी थी।

कृष्ण भगवान ने (गुरु) सांदीपनी की सेवा करी थी।

सो, हम आप लोगों को भी यही सिखाते हैं।

योगीजी महाराज भी पच्चीस-पच्चीस दंडवत्-

स्वामिनारायण भगवान (की मूर्ति) को वड़ताल में करते थे।

मैंने एक दिन पूछा – बापा इतने क्यों?

वे बोले कि यह तो कुछ नहीं है, कम है।

ये महाराज ने पृथ्वी पर आकर क्या बख़्शिश दी? गुणातीत!

(बापा कहते) – मुझे डंडे से मारने वाले, मेरे हाथ तोड़ डालने वाले –

विज्ञानस्वामी को धन्य है,

कि

कुछ भी हो, उन्होंने मुझे शास्त्रीजी महाराज की पहचान करवाई

और

मुझे अक्षरपुरुषोत्तम में लाए।

वाह – वाह!

वो-उनके पास कोई भाषा-कोई लेंग्वेज – कोई भावना!

तो, यह बुद्धि का विषय नहीं है, हृदय की भावना।

मैंने ढाई मिनिट से चार मिनिट-बंगाली हिसाब से लिया।

आप सभी-पंजाब से, महाराष्ट्र से

उधर से – देश-विदेश से, अमेरिका से – आए हो।

हमारे

महेन्द्रभाई, दिनकरभाई, राजुभाई और हमारी शर्मिष्ठा बहन – वो,

हमारी आज जो कुछ जिसने सेवा करी –

(सिर्फ) गुणातीत ज्योत महिला केन्द्र को ही नहीं,

(बल्कि) सारे गुणातीत समाज को पहुँचती है।

(जिसने सेवा) न करी हो, वो पच्चीस महापूजा की सेवा तो दे देना।
इतनी मैं भिक्षा माँगता हूँ!
(वह) इसलिए कि आपके जीवन में जो भी गंदगी हो, वह भी निकल जाए
और इसकी जिम्मेदारी
काकाजी, पप्पाजी, बा, हरिप्रसादजी, अक्षरविहारीजी, हमारे अमृतबापा,
हमारे कोठारी – प्रेमस्वामी, मुकुंदजीवन,
हरिभाई साहेब, जशभाई साहेब जैसे हम सभी लेते हैं
और
हे महाराज! हे स्वामी!
अब एक मिनिट धुन करके पूरा हो जाएगा।
हमारे रमेशभाई की भी तबियत अच्छी हो जाए।
कोई और बीमार हुआ हो,
हमें स्वभाव बाधारूप न हो,
और
आपके चरणों में 'बालक' बन कर नम्र प्रार्थना करता हूँ।
अभी शांतिभाई मंत्र बुलवाएंगे,
उसके साथ यह (पूर्णाहुति) हो जाएगी।
'सामने आया मुक्त-सामने आया मुक्त' –
पहली बार और दूसरी बार नज़रअंदाज कर दो;
तीसरी (बार) आपको जो देखना हो, वह देखो।
इतना तो जरूर करें।
और
योगीजी महाराज की जयंती तो बहुत दूर है,
लेकिन नेक्स्ट टाईम – नेक्स्ट ईयर,
जब भी हम ऐसा ही उत्सव मनाएं,
तब हम सब लोग मिलजुल कर
भगवान, शास्त्री महाराज और योगी महाराज की यह विरासत का –
गुणातीत समाज का यह झंडा, आकाश में जो लहरा रहा है, वह लहराता रखें
और
वो कलश-सुहृद्भाव का–

रायशी को भी कहा था – मुंबई में,
सुहृद्भाव का कलश चढ़ाओ।
तो वह कलश चढ़ाने के लिए-
फकीरभाई और हमारे भगतजी सभी, सभी साथ देकर यही काम करें।
(मुझे) शर्मिष्ठा बहन और सूर्यकांतभाई अमेरिका वाले व
दिनकरभाई ने जो सेवा दी है,
वह आज गुणातीत ज्योत को
कांतिभाई के हाथों से हम अर्पण कर देते हैं।
बाकी जिस-जिसकी इच्छा हो,
श्रद्धा-श्रद्धा के मुताबिक, कोई आग्रह नहीं है –
वह सब गुणातीत ज्योत को-
आज इतना-इतना हमारे लिए परिश्रम किया, इतनी आज दौड़ाभागी करी और
पप्पाजी को कहा – मैंने कहा –
मीठा दलिया खिलाओ, मीठा दलिया-हं!
तो बोले – नहीं, नहीं।
इतना अच्छा दिन है, छोटे भाई का।
तो ये बड़े भाई – बड़े भाई के चरणों में प्रार्थना-
आपको तकलीफ पड़ी हो,
हमारे लिए रातोरात यह सब डेकोरेशन करना पड़ा,
वो बहनों को भी हमने तकलीफ दी है।
उन सभी को एकांतिक धर्म-सरलता से सिद्ध हो जाए,
यही गुरुचरणों में प्रार्थना!
धन्यवाद! धन्यवाद! धन्यवाद!

मंत्र, तंत्र और यंत्र का ऐक्य

वेदकाल से पौराणिक और आधुनिक युग तक में जितने-जितने महामंत्र प्रवर्ते हैं, उन सभी में **'स्वामिनारायण महामंत्र'** की अनोखी विशिष्टता मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी ने अपनी बातों में बता दी है – इस महामंत्र की सार्वभौमिकता प्रतिपादित करके बताई है। इस मंत्र से काले नाग का ज़हर भी उतर जाता है – विषय के राग टल जाते हैं और जीव ब्रह्मरूप हो जाता है। परंतु, जब कभी ऐसा नहीं दिखाई देता, तब सभी को विचार उठता है कि स्वामी की बात का भावार्थ और रहस्यार्थ क्या होगा?

गुरुवर्य ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज ने प्रगट उपासना का महामंत्र मूर्तिमान किया तथा 'अक्षर' सहित 'पुरुषोत्तम' की सर्वोपरि उपासना की नींव डाली।

'भक्त सहित भगवान की इस युगल उपासना में धाम, धामी और मुक्तों के अखंड प्रगटीकरण की मान्यता में दृढ़ विश्वास रख कर, समझदारीपूर्वक प्रगट स्वरूप के अनुसंधान सहित - नामी सहित नाम के मंत्रोच्चारण से उपरोक्त परिणाम सचोट आते ही हैं।'

यह बात अनादि महामुक्त भगतजी महाराज, अनादि महामुक्त जागास्वामी, अनादि महामुक्त कृष्णजी अदा, अनादि महामुक्त पूंजाजी बापु तथा पू. बाळमुकुंदस्वामी जैसे गुणातीत बाग के महामुक्तों ने ऐसा जीवन जीकर मंत्र, तंत्र और यंत्र का मानो ऐक्य बना दिया और... प्रकृति पुरुष से परे के इन धाम, धामी और मुक्तों के इस पृथ्वी पर अखंडित प्रगटीकरण की बात समझा दी। यूँ, दिव्य जाग्रतता रख कर भजन की-निर्दोषबुद्धि की अनोखी रीत सभी के लिए सुलभ बनाई; इसी की बदौलत भरतखंड और सारी मानवजाति अनंत काल तक गुरुवर्य ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज की, गुणातीत बाग के इन महामुक्तों की और विशेष रूप से तो गुरुहरि योगीजी महाराज की ऋणी रहेगी ही।

ऐसी स्वरूप निष्ठा का रहस्यज्ञान समझ कर, प्रगट की स्मृति के साथ **'स्वामिनारायण मंत्र'** की पुकार करने वाले को, जीतेजी ही आत्यंतिक कल्याण का अति कठिन मार्ग सरल हो जाता है। इस परम रहस्य को हम अपने जीवन में जितना

घोटेंगे, उतनी ही जीव के जीवन की – सुहृद्भाव की नींव मजबूत बनेगी। **वर्ना तो प्रगट स्वरूप और उनके संबंध वालों में दिव्यभाव रखे बिना, भले कितने ही साधन और प्रवृत्तियाँ की जाएँ, पर कभी न कभी विपरीत माहौल में या भगवान की योगमाया में फँस कर, उपासना और आज्ञा निरर्थक बन कर फलदायी न भी हो! परंतु , यदि इस तरीके की प्रगट की निष्ठा और दिल की सच्चाई से नामी के सहित नाम का भजन होगा, तो सभी प्रकार से सुहृद्भाव प्रगट होगा और तभी निर्दोषबुद्धि दृढ़ होगी एवं जीतेजी ही अक्षरधाम का सुख सभी को प्राप्त होगा।**

इस रहस्य - मर्मवचन को मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी ने अपनी बातों में समझाया है और अभी भी यह सभी के लिए सुलभ है ; जिससे जब भी - जिस पल, हम ऐसे शुद्धभाव से पुकार करने का ठहराव करेंगे, तभी उसके प्रगट स्वरूप का अनुभव होने लगेगा। तो, बेहिचक और निश्चिंतता से ऐसी दिव्य कॉन्सियसनेस सभी को सुलभ हो और जीतेजी परम सुखी बनें, यही अभ्यर्थना।

– प.पू. काकाजी महाराज, 1966

'**स्वामिनारायण महामंत्र**' की एक अनोखी और अद्वितीय विशिष्टता यह है कि इस गुणातीत सत्संग समाज में परब्रह्म का अस्तित्व और ऐसे कल्याणकारी तत्त्वरूप व्यक्तित्व का प्रगटीकरण अखंड रहता ही है। इस न्याय से, भगवान के अखंड धारक ऐसे संत की स्मृति के साथ, एकाग्रचित्त से जो कोई इस मंत्र का जाप करके भजन, कीर्तन, कथावार्ता करता रहे, तो उसके जीवन में जरूर परिवर्तन आता रहता है व आध्यात्मिक अनुभवों की परंपरा की शुरुआत भी होती है और आख़िर में शब्दब्रह्म में से जीवात्मा अक्षरब्रह्म में प्रवेश करके ब्रह्मरूप होकर, परब्रह्म का अखंड धारक बनती है। चैतन्य के उर्ध्वगमन के ऐसे विशिष्ट प्रकारों की स्पष्टता भगवान श्री स्वामिनारायण ने अनादि महामुक्तों के रूप में, अपने जैसे ही मूर्तिमान स्वरूप लाकर करा दी और तभी निजी सूक्ष्म कसरें सभी की समझ में आने लगीं और ऐसे संतों द्वारा टालने का बल भी मिला है। यूँ , ऐसे साक्षात् चैतन्य व्यक्तिस्वरूपों ने मानवस्वरूप में प्रगट होकर, हमारे जड़तत्त्वों को ग्रहण करके दिव्य बनाया!

वही परम दिव्य ऋतचेतना अभी भी गुणातीत समाज में ऐसी की ऐसी ही क्रियाशील है, तो ये मंत्र, तंत्र और यंत्र जहाँ एक होते हैं, वहाँ – ऐसे एकांतिकों के पास गरज रख कर, ऐसा लाभ लेकर परात्परस्वरूप का अनुभव करके हम परम सुखी हो जाएं, यही अभ्यर्थना!

– प.पू. काकाजी महाराज, 1971

अनोखा अक्षरमत

पहले जो आचार्य हुए, उनमें –
किसी ने *'ज्ञान'* को प्राधान्य दिया,
किसी ने *'भक्ति'* को प्राधान्य दिया
और
किसी ने *'तप - त्यागादिक'* साधन प्रधान माने।
यूँ, हर एक ने अपनी - अपनी अलग रुचि के आधार पर संप्रदाय चलाए।
भगवान स्वामिनारायण ने प्रत्येक संप्रदाय के मतों में जो विशुद्ध तत्त्व देखे
उन्हें मान्य रख कर, सभी शास्त्रों के निचोड़ रूप सिद्धांतों को स्थान देकर,
सुई के साथ - साथ आसानी से निकलते हुए पिरोए धागे की भाँति
अक्षररूप होकर, पुरुषोत्तम को धारने का निजी अचल सिद्धांत
'अक्षरमत' प्रवर्ताया है।

(1) भगवान स्वामिनारायण ने स्वयं के धाम, मुक्तों एवं ऐश्वर्य सहित
इस पृथ्वी पर उनके अवतरित होने का कारण और रहस्य
अपने जीवन और कार्य द्वारा
एवं
वचनामृत के ग्रंथ द्वारा खूब स्पष्टता से समझाया है।
फिर भी *'गुणातीतभाव'* की या *'अक्षरमत'* की विशिष्टताएँ संप्रदाय में या बाहर
सामान्य तौर पर अभी तक आसानी से, सभी समझ नहीं पाए हैं।
पर, इस ज्ञान की दृढ़ता के बिना यानि ऐसे *'गुणातीत ज्ञान'* की दृढ़ता के बिना
विपरीत कठिन माहौल में आत्यंतिकी मुक्ति के मार्ग पर चलते हुए
कई कसरें रह जाती हैं।
ऐसा *'गुणातीतभाव'* मूल आत्मा का सनातन भाव है, जो त्रिकाल से निर्बंध है।
एकांतिकी की रीति, नीति और स्थिति शास्त्रोक्त रूप से साकार करने के लिए
भगवान स्वामिनारायण अपने साथ

पराभक्ति के आदर्श रूप एवं आत्यंतिकी मुक्ति के एक अनिवार्य तत्त्व रूप,
अपने सनातन अक्षरधाम को, मूर्तिमान साकार स्वरूप में-मनुष्याकार में लाए,
जो सत्संग में **गुणातीतानंदस्वामिजी** के रूप में पहचाने गए।
अनादि महामुक्त गोपाळानंदस्वामिजी द्वारा इस मर्म का प्रतिपादन भी हुआ
और
शुद्ध गुरु परंपरा जारी रखी, जो हमेशा लगातार चलती रहेगी।
ऐसे गुणातीत स्वरूप की अखंडितता को पहचान कर
उनके संबंध में आना ही सच्चा *'भक्तपन'* बताया
और
'एकांतिकभाव' की सिद्धि भी उनके द्वारा ही हो सकती है–
यह भी स्पष्टता कर दिया।
ऐसा *'गुणातीतभाव'* जो कि भगवत्स्वरूप संत द्वारा जीवन में सिद्ध करना है,
इस हेतु 'अक्षरमत' के मुताबिक *'अक्षरब्रह्म'* की अनिवार्यता किस प्रकार है,
वह यहाँ सरलता से बता रहे हैं।
श्रेयार्थी बुद्धिशाली वर्ग इसे भली भाँति समझ ले
और
सच्चे संत के प्रसंग से – उसके मुताबिक वर्तने से, आध्यात्मिक अनुभव अवश्य होगा–
ऐसा ठोस यह सनातन सिद्धांत है।
हमारी मुक्ति ब्रह्मस्वरूपी है।
गीता के *'ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा...'*
और शिक्षापत्री के *'निजात्मानं ब्रह्मरूपं...'* श्लोक के मुताबिक
श्रीजी महाराज की - परब्रह्म की सेवा का अधिकारी बनने के लिए
जीवात्मा को ब्रह्मरूप होना ही पड़ता है।
वच. लोया 7 में भी महाराज ने बताया है कि जो ब्रह्मरूप हो
उसे ही परब्रह्म की सेवा का अधिकार है
और...
ब्रह्मरूप होने के लिए वच. म. 30 और अमदावाद 2 के मुताबिक
सनातन साकार ब्रह्म को परम सत्य मान कर
उसका मनन द्वारा निरंतर संग करना चाहिए।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।

अवमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥ *(मुंडक उपनिषद्, 2-2-4)*

इस प्रकार साकार अक्षरब्रह्म का साक्षात् संबंध और प्रसंग होगा,
तो ही, जीव ब्रह्मरूप होकर पुरुषोत्तम में निर्विकल्प रूप से जुड़ सकेगा
और
इसलिए ही गीताजी में भी कहा है –

'ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञावामृतमश्नुते।'

अर्थात् – जो जानने योग्य हैं और जिन्हें जान कर अमृत रूप मुक्ति पाई जा सकती है,
उसे मैं तुम्हें बखूबी कह रहा हूँ।
अनादि महामुक्त गोपाळानंदस्वामी ने अपने भाष्य में
'ज्ञात्वा' शब्द का ***'साक्षात् बुध्वा'*** अर्थ करके
आत्यंतिकी मुक्ति के लिए, अक्षरब्रह्म का साक्षात् 'प्रसंग' ही निर्देशित किया है।
यूँ, परब्रह्म स्वरूप में परम अद्वैतभाव से-फिर भी स्वामीसेवकभाव से जुड़े रहना
और
हरिमय-हरिप्रेरित ऐसा पराभक्ति युक्त अखंड जीवन जीने की –
आत्यंतिकी मुक्ति की शुरुआत *'गुणातीत पुरुष'* द्वारा ही होती है।
(2) कई अवतार आए-लेकिन कार्यकारण के भाव से!
और... उस लक्ष्य से सभी अपना - अपना कार्य करके अंतर्धान हो गए।
जीव के *'कारण'* और *'महाकारण'* के भावों को टाल कर
किसी ने कल्याण नहीं किया।
महाराज ने वच. म. 26 में यह स्पष्ट किया कि अन्य धामों और लोक में
गुण के, कर्तव्य के और साधना के राग रह गए।
जितनी उपासना, उतनी प्राप्ति हुई।
विपरीत परिस्थिति में राधाजी जैसे पर भी गौलोक में गुण का भाव हावी हो गया
और
जय विजय को भी वैकुंठधाम से गिरना पड़ा।
यूँ, **ऐसे गुणमय स्थानों पर महाकाल असर कर जाता है!**
स्वामी की बात में लिखा है कि –
गौलोक के मुक्त को प्रेम अधिक है और बद्रिकाश्रम के मुक्त को तप-त्याग अधिक है;
जबकि अक्षरधाम का मुक्त ब्रह्मरूप है।
इस प्रकार, तीन देह के भाव को टाल कर, ब्रह्मरूप होकर, परब्रह्म में जुड़ने का मार्ग

भगवान स्वामिनारायण ने साकार ब्रह्म द्वारा ही प्रस्तुत किया।
निराकार ब्रह्म को-अक्षर के प्रकाश को *'सच्चिदानंद ब्रह्म'* समझ कर
उसकी उपासना से या उसके साथ तादात्म्य करने से
जीव का मूल अज्ञान-महाकारण शरीर के भाव टलते नहीं हैं।
कोटि साधन करने के बाद भी बड़े–बड़े ऋषिमुनियों के विषय रस गए नहीं–
यह सभी जानते हैं।
भगवान या भगवान के सनातन अक्षरधाम ऐसे मूर्तिमान *'अक्षरब्रह्म'* का
या
उस स्वरूप के साधर्म्य को पाए हुए अनादि महामुक्तों का
जब तक संबंध न हो जाए और उसके प्रति निर्दोषभाव न हो जाए
तब तक लिंग देह पिघलता नहीं है
और
काम तथा मान के रूप में जीव में रहे अव्यक्त राग और रस
हमेशा के लिए टलते नहीं हैं।
इसलिए ही भगवान स्वामिनारायण ने अपने धाम को पृथ्वी पर लाकर
और
गुणातीत परंपरा सतत जारी रख कर
इस ब्रह्मांड के लिए अक्षरधाम का अर्चिमार्ग हमेशा के लिए खुल्ला कर दिया।
शास्त्र की दृष्टि से भी –

भिद्यते हृदयग्रन्थिच्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।। *(मुंडक उपनिषद्, 2-2-8)*

यूँ, *'एकम्-अद्वितीयम्'* नारायण ऐसे भगवान को पहचान कर
उनकी उपासना-भक्ति करने के लिए
गीताजी में दर्शाए हुए *'अनादि मत्परं'* ऐसा *'अक्षरब्रह्म'* –
जो कि अनादि स्वरूप है-सनातन विभूति है-अंतिम आदर्श है
और
उसके द्वारा ही–उसकी भावना करने पर *'गुणातीतभाव'* आने से
नारायण सहज ही प्रगट होते हैं और अंगोअंग में निवास करके रहते हैं।
इस प्रकार ही आत्यंतिकी मुक्ति –
जहाँ परब्रह्म पुरुषोत्तम-नारायण के साथ का नित्य सिद्ध संबंध स्वतंत्र है,

वह प्राप्त होती है।

(3) ‘आत्मा में स्थित रह कर परमात्मा को धारण करना’ –
इस प्रकार से सद्. स्वरूपानंदस्वामी द्वारा
आत्मनिष्ठा के बल से, वृत्ति से किए साक्षात्कार की बात को सभी जानते हैं।
लेकिन मूर्ति का बल टूटते ही उदासीनता टालने के लिए
अपने संबंध वाले दादाखाचर के दरबार की खपरैल का ध्यान करना
महाराज ने बताया।
यूँ, कई मूर्ति सिद्ध पुरुषों को
सीधे-सीधे ही महाराज का संबंध और निश्चय होने पर भी,
‘गुणातीत ज्ञान’ की कसर के कारण, वे विक्षेप को पाए हैं।
इसीलिए जीतेजी ही भगवान का अपरंपार सुख लेने के लिए
भगवान स्वामिनारायण ने ***‘गुणातीत’*** की अनिवार्यता बताने के हेतु से
हर वर्ष एक महीने के लिए
जूनागढ़ समागम करने जाने का परमहंसों को आदेश दिया
और
शिक्षापत्री के श्लोक 116 में **निजात्मानं ब्रह्मरूपं** के रूप में
‘ज्ञानप्रलय के भजन’ का प्रतिपादन किया।
और...
वच. म. 56, अंत्य. 24 और 36 में उनके संबंध वाले महामुक्तों को भी
यदि स्त्रीधन का योग हो जाए तो –
ऐश्वर्य और मान से लिपटे रह कर कनिष्ठ त्यागी की स्थिति में भी वे रह पाएं या नहीं
यह आशंका जताई!
जबकि दूसरी ओर, ‘गुणातीत’ के संबंध से और वचन से
या
एकांतिक संत के वचन से
भगवान की मूर्ति सिद्ध करने वाले को जीतेजी ही *‘निर्बंध और निष्काम भक्त’* गिनवाया।
स्वामी की बात – प्रकरण 3 की 25 और 42 में
ऐसे साधु के ज्ञान को *‘आत्यंतिक प्रलय’* का सनातन ज्ञान बताया है
और
‘पर्वतभाई एवं अंबरीष जैसे अनंत’ – कह कर

ऐसे *'साधु के ज्ञान वाले'* के दोनों पाँव अक्षरधाम में हैं – यूँ मर्म में बात की गई है।
महाराज से मिले हुओं में कुछ कसर रह जाए, क्योंकि मनुष्यभाव आ जाए!
जबकि, गुणातीत पुरुष द्वारा या एकांतिक के प्रसंग से स्वरूप का ज्ञान पाए हुओं को भगवान की 'अनुवृत्ति' और 'अभिप्राय' का जैसा है वैसा ख्याल पड़ता है।
इससे उन्हें विपरीत माहौल बाधारूप नहीं होता।
यह *'ज्ञानसमाधि' 'निर्विकल्प समाधि'* से भी अधिक और श्रेष्ठ है।
'साकार ब्रह्म' के संबंध से
पू. भगतजी महाराज, पू. जागास्वामी, पू. कृष्णजी अदा, पू. बालमुकुंदस्वामी वगैरह जीवंत साकार गुणातीतस्वरूप बने।
दो सौ लड़कों को मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामी ने
जूनागढ़ में *'ब्रह्मविद्या'* सिद्ध कराई
और
उनकी प्रकृति का संपूर्ण रूपांतर करके उन्हें भगवान का अखंड धारक बनाया।
स्वामी कहते – *'मैं करुं, ऐसा यह एक-एक कल्याण करेगा।*
महाराज को देख कर जैसे समाधि और शांति होती है,
वैसे ही उनके दर्शन से होती है' –
यूँ, निरंजनानंदस्वामी जैसे का उदाहरण देकर स्वामी ने तीसरे प्रकरण की बात में इसका स्पष्ट दर्शन भी कराया है।
जीतेजी ही सनातन अक्षरधाम की यह रीति
गुणातीत मुक्तों द्वारा हमेशा के लिए खुल्ली रहेगी।
आज भी ऐसे संतों और जीवनमुक्तों द्वारा निर्दोषबुद्धि के सिद्धांत पर
यही सनातन सिद्धांत व्यापक रूप में फैल रहा है।
उनके संकल्प से, आज भी एकांतिकभाव प्राप्त करना अत्यंत आसान बना है,
यह हमारा सच में महान अहोभाग्य है।
(4) इस सिद्धांत की दूसरी विशिष्टता यह है कि
अनंत साधनों से पशु में से मानव हुआ, उसमें अब तक के आध्यात्मिक विकास में शुद्धिकरण के जितने-जितने प्रयोग हुए
उन सभी में सबसे पहला कदम निर्वासनिक होने का है और तभी –
अंततः परब्रह्म प्रगटा पाएंगे।
गुणातीतानंदस्वामी ने –

'इस साधु के प्रति सद्भाव – यही निर्वासनिकभाव का कारण है' –
कह कर **आशीर्वचन** दिया कि –
ऐसे ब्रह्मस्वरूप संत की हर एक क्रिया दिव्य लगे और उसका गुण ही ले तो
अल्प जैसा या चाहे कैसा भी कामी, क्रोधी, लंपट जीव हो,
लेकिन वच. प्र. 58 के मुताबिक, अत्यंत निष्कामी और निर्बंध हो जाता है।
दूसरी ओर, चाहे कैसा भी निष्कामी या निर्मानी, निर्लोभी पुरुष हो,
लेकिन ऐसे कल्याणदाता पुरुष में या एकांतिक भक्तों में मनुष्यभाव देखने से,
उसका ज्ञान और स्थिति अभद्र बन जाती है।
यानि कि अपनी स्थिति में से वो गिर जाते हैं।
'अक्षरमत' का अनुसरण करने से
जैसे महाराज ने पात्रता देखे बिना, लक्षावधि जीव का शुद्धिकरण करने के लिए
'आसरे में ही कल्याण' का मार्ग खुल्ला रखा,
वैसे ही गुणातीत पुरुषों ने
यह विशिष्ट *'निर्वासनिकभाव'* अपने संबंध और सद्भाव से खुल्ला रखा!
***'अक्षरब्रह्म'* की यह एक सर्वोपरिता और विशिष्टता है**
और
ब्राह्मीस्थिति के लिए इसकी यूँ अनिवार्यता रहती है।
दूसरी ओर – वच. प्र. 53 में
ऐसे प्रगट पुरुष में जातिभाव, मायिकभाव या ज़रा-सा भी मनुष्यभाव रखने वाले को
विमुख, अधर्मी और सभी मूर्खों का राजा कहा है।
इसीलिए ऐसे प्रगट पुरुषों में जातिभाव, मनुष्यभाव
या
मायिकभाव तनिक भी न रख कर,
सेवा कर सकें, तो करनी; लेकिन असेवा में तो पड़ना ही नहीं -
यह रहस्य समझना भी जरुरी है।
सो ही – इस गुणातीत ज्ञान में वच. प्र. 16 और 49 के मुताबिक
सतत अंतर्दृष्टि और प्रार्थना करने वाले को
या
गरजु बन कर महिमा से सेवा करने वाले को
कोटि कल्प तक साधन करने के बावजूद भी जो अक्षरधाम की प्राप्ति न हो,

वह इस साधु को पहचान कर दो हाथ जोड़ने में – उनका जँचता करने में
बख़्शिश में मिल जाती है!
मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामी ने कहा कि आज तो मौज दी है।
मौज का मूल्य होता ही नहीं है।
ऐसी ज्ञानदृष्टि उनके अनादि महामुक्तों द्वारा प्रगट रही है, रहेगी और रहेगी ही।
मानवजाति के लिए यह सबसे बड़ी बख़्शिश है,
जो **आध्यात्मिक उत्कर्ष साधने वालों को देर-सवेर मान्य करनी ही पड़ेगी।**
इस प्रकार 'गुणातीतभाव' को पाए हुए चैतन्य को, भीतर से जगत छूट जाने पर,
भगवान का अपरंपार सुख जीतेजी अखंड प्राप्त होता है-भोगा जाता है।
उसे ब्रह्मज्ञान होता है।
मायिकभाव टल जाता है और जीव साकार ब्रह्म के संग से ब्रह्मस्वरूप होता है।
समग्र सत्संग को वह दिव्य मानता है।
आठों प्रहर ऐसा अहोहोभाव, ऐसी कृतार्थता
और
ऐसा पूर्णभाव माना जाता है-रहता है।
ऐसे भगवदी के प्रसंग से भी
ऐसे ही *'नैमिषारण्य'* के-सुख, शांति तथा आनंद का अनुभव होता है।
वच. म. 30 और अमदावाद 2 के मुताबिक, शुद्ध चैतन्य ब्रह्म को ही मान्य रखने से –
हठ, मान, ईर्ष्या, असूया और मत्सर जैसे सूक्ष्म दोष निर्मूल हो जाते हैं
और
अनादि मुक्त की दशा सरलता से श्रेयार्थी साधक प्राप्त कर सकते हैं।
इन चार मुद्दों के कारण,
आत्मा और परमात्मा के इस सर्वोत्तम सत्संग को सिद्ध करने में
'गुणातीतभाव' को आदर्श रूप गिना जाता है।
वच. कारियाणी 7 के मुताबिक –
इसके सिवा आत्यंतिकी मुक्ति को पाकर
पुरुषोत्तम रूप होने की सिद्धदशा मिल ही सकती नहीं।
'गुणातीतभाव' को पाकर ही
'निरंजनः परम साम्यमुपैति' अथवा *'मद्भावमागताः'* का
अक्षरधाम का साधर्म्यभाव पाया जाता है।

पुरुषोत्तमनारायण तो – *'जैसा उन्हें हम जानें, वैसे हमें बना कर'* – वे निर्लेप रहते हैं।
यूँ, हमारी आत्यंतिकी मुक्ति के स्वरूप और प्रकार से –
'मुक्त' चैतन्यस्वरूप में स्वतंत्र और निर्बंध होकर
गुणातीत के साथ अभेदभाव से और महाराज के साथ सेवकभाव का भेद रख कर
पुरुषोत्तमनारायण के अनवधिकातिशय महिमा का परमानंद प्राप्त करता है।
ऐसी अत्यंत स्वतंत्र और सर्वोत्तम मुक्ति – परम कल्याण या परम पद
गुणातीत स्वरूपों के केवल अनुग्रह मात्र से ही, हमें अत्यंत सुलभ है।
तो, गुणातीत के इस प्रागट्य दिन पर हम सभी ऐसा संकल्प करें कि
हम महाराज के अखंड धारक बन कर, उनके गुणगान करते हुए
समग्र गुणातीत बाग को दिव्य मान कर,
'अक्षरधाम का दिव्य सुख' अखंड लिया करें
और
प्रगट स्वरूप की ही अनुवृत्ति के मुताबिक सेवा-भक्ति किया करें...

– प.पू. काकाजी महाराज, 6-10-67

प्रगट ब्रह्मस्वरूप प.पू. हरिप्रसादस्वामिजी

प्रगट ब्रह्मस्वरूप प.पू. अक्षरविहारीस्वामिजी

प्रगट ब्रह्मस्वरूप प.पू. साहेबजी

भगवत्स्वरूप प.पू. हरिभाई साहेब

अक्षरपुरुषोत्तम के सिद्धांत से भगवान भजना यानि क्या?

अक्षरपुरुषोत्तम के सिद्धांत से भजन की शुरुआत
धाम, धामी और मुक्तों के भजन से होती है;
जिसमें सबसे बड़ी दो शर्तों का समावेश होता है –
(1) प्रत्यक्ष गुणातीत स्वरूप द्वारा महाराज का प्राकट्य
और
उनकी सर्वोपरि सत्ता को स्वीकार करना
(2) सुहृद्भाव और निर्दोषभाव का आध्यात्मिक नियम, जो कि
महाराज ने भक्त सहित प्रत्यक्ष भगवान की उपासना द्वारा
रहस्य के रूप में प्रगट किया है।
प.पू. गुरुवर्य शास्त्रीजी महाराज ने
सनातन तत्त्वों की स्पष्ट पहचान करवा कर उसे मूर्तिमान किया
और
पू. योगीबापा ने संघनिष्ठा के रूप में,
खुली रीति से अक्षरधाम का सुख लेने के लिए हमेशा के लिए जारी किया
व
अनुभवज्ञान के रूप में साबित कर दिया।
तीर्थगीता में जिस गुणातीत स्थिति का वर्णन किया है वह–
'साक्षी भेदा जाए'–यानि कि मुझे मिले प्रत्यक्ष स्वरूप में महाराज अखंड रहे हैं
और
उन्हें सम्यक् दिव्य माना जाए–ऐसी वचनामृत प्र. 37 जैसी निष्ठा दृढ़ होने पर
आत्यंतिक कल्याण के इस मार्ग पर यानि–
जीतेजी ही अक्षरधाम में अखंड रहने के इस पथ पर प्रवेश मिलता है;
फिर उनकी कृपा से **'ब्रह्मदृष्टि'** प्राप्त होती है

और
उनके अभिप्राय को जानने वाले एवं उनसे मिले हुए
दो अच्छे साधु या भगवदी के साथ दिव्य कुटुंबभाव से सहज जीवन जीने पर
वचनामृत कारियाणी 7, वचनामृत लोया 7 और वचनामृत पंचाला 7 के मुताबिक
धीरे-धीरे मूर्ति की सच्ची **'सिद्धदशा'** यानि कि
'सम्यक् निर्दोषबुद्धि' प्राप्त होती है।
फिलहाल प.पू. पप्पाजी, प.पू. काकाजी, प.पू. स्वामिजी एवं प.पू. महंतस्वामी ने
पू. योगीबापा का सेवन करके, ब्रह्म के ऐसे गुण प्राप्त किए हैं।
हमारे सद्भाग्य से उनकी पहचान हो गई और उन्हें प्रभु का स्वरूप माना गया।
अब **ऐसे ब्रह्मस्वरूप मुक्तों में तनिक भी भेदभाव**
या
छोटे-बड़े का भाव रखने का रहता ही नहीं।
महाराज ने वेदरस में तीसरे पृष्ठ के ऊपर बहुत ही स्पष्ट रूप से ऐसा कहा है
और
शास्त्रीजी महाराज ने उसका प्रतिपादन किया है।
गुणातीतभाव में रहता प्रत्यक्ष स्वरूप आत्यंतिक कल्याण का द्वार भी है
और
जीव को ब्रह्मरूप करके परब्रह्म में जोड़ कर
ब्राह्मीस्थिति करवाने वाला भगवत्स्वरूप भी है
व
'स्वरूपी' – महाराज तो पर के पर...
किसी भी संजोग में कोई महाराज हो सकता ही नहीं।
कोई स्वरूप परभाव में आकर ऐसे आशीर्वाद या वचन दे गए हों या बोल गए हों,
तो उनमें रह कर महाराज बोल गए – यूँ कहा जाए।
प.पू. शास्त्रीजी महाराज ने यह बहुत स्पष्ट समझाया है।
सो, ऐसे प्रसंग में निजी समझदारी, व्यक्तिवाद या एकदेशस्थवाद
बिल्कुल छोड़ देना पड़े।
यहाँ बुद्धि के चार दोष-संकल्प, विकल्प, विपरीतभाव और भेदभाव को
अभिप्राय को जानने वाले भगवदी के प्रसंग से दूर करना पड़े।
हमारे 'मन से' पहचाना हुआ और इस प्रकार मायिकभाव से पकड़ा हुआ

या
अज्ञानी मन से माना हुआ, जोशीला भ्रांतिज्ञान विघ्नकर्ता है।
जब तक इस प्रकार की मायिक दृष्टि है,
तब तक किसी भी तरह का स्वरूपलक्षी आग्रह या अभिप्राय देना विघ्न कर्ता बनता है।
शास्त्रीजी महाराज के कहने के बावजूद भी,
पू. विज्ञानस्वामी, भगतजी में ऐसा प्राकट्य नहीं मान पाते थे;
लेकिन उनकी भावना शुद्ध थी,
तो, महाराज ने ही भगतजी में जोड़ा और ऐसा दर्शन करवाया।
सो, किसी भी प्रकार की नापातौली में पड़े बिना,
जिसे जहाँ सच में लगाव हो, उसमें बढ़ावा करवा कर ही
महाराज के प्रति का 'पुरुषोत्तमभाव' दृढ़ करवाना चाहिए।
ऐसी अनुभूति वाले **सॅम्पल्स** भी तैयार हो गए हैं।
पू. कोठारीस्वामी, पू. प्रेमस्वामी आदि भगवदियों द्वारा ही,
ऐसा स्पष्ट निर्विकल्प निश्चय दृढ़ हो सकता है।
सो, हमें अपनी '**मायिक समझ**' छोड़ कर केवल '**साधु की समझ**' पकड़नी है।
फिर– **ये महाराज हैं, ये गुणातीतानंदस्वामी हैं या ये गोपाळानंदस्वामी हैं– ऐसा भ्रमभरा बेहूदा ज्ञान रहेगा नहीं**
और
अखंड सुख, शांति और आनंद की प्राप्ति होगी व दूसरों को भी दे सकेंगे।
हमारे मायिक दृष्टि वाले चक्षु बदल जाने पर और दिव्य दृष्टि वाले बनने पर,
'**जहाँ देखो वहाँ रामजी**' –ऐसा अखंड 'आनंद-आनंद' दृढ़ हो जाएगा।
यह बात एकदम समझ नहीं पाए
या
किसी भी प्रकार की उलझन, विक्षेप या क्षोभ बाधारूप बन जाता हो,
तो सच्चे संत के समागम में रह कर, उन्हें मन सौंप कर शुद्धभाव से प्रार्थना करके
ऐसी मान्यता का फर्क टाल देना चाहिए।
फिर भी, किसी प्रकार की परेशानी–
'केवल ज्ञानी' मुक्तों की ओर से
या
भीतर की प्रकृति या पुरानी आदत के कारण रहती हो–

तो, प.पू. बापा बहुत ही सरल उपाय–

'परेशानी आए तो माला फेरनी' –देकर गए हैं।

सो, अंतर से ऐसा भजन करके,

रात को प्राणिक जप - पाँच मिनिट करके,

प्रायश्चित् रूप प्रार्थना करके सो जाना...

हे महाराज! जैसे हैं वैसे, आपके स्वरूप की पहचान करवाना।

तो, जिसे जहाँ जैसी जरुरत होगी, वहाँ उसे महाराज जोड़ देंगे।

किसी को भी आग्रहपूर्वक या (चालाकी से) जोड़ना ही नहीं है।

यह एक प्रकार की 'अस्मिता' है।

सो, हमें ठाकुरजी और 'उनके संबंध वाले सभी को दिव्य मान कर'

प्रायश्चित् रूप प्रार्थना सहित भजन कर लेना है।

गुणातीत समाज - आप जहाँ होंगे वहाँ–

इस शुद्ध परंपरा पर ही विकसित हो रहा है।

वहाँ किसी के भी अभाव, भावफेर या अवगुण की बात होगी नहीं।

बस, 'दिव्यता दिव्यता' ही...

प.पू. शास्त्रीजी महाराज बार - बार कहते– **'पुष्टि प्रगट पुरुषोत्तम की'** है।

लेकिन–मन सौंपे बिना यह समझा नहीं जाएगा, तो अनुभव में तो आएगा ही कैसे?

वर्ना गुणातीतज्ञान की दृष्टि से 'स्वामीसेवकभाव' कभी भी खंडित नहीं होता।

विदेही मुक्तों को एक सिक्के के दो पहलुओं की भाँति,

दो अवस्थाओं में उसका अनुभव होता है।

सो, बौद्धिक सोच से या किसी से सुन कर अपने आप हल निकाल लेने पर,

जीव को **'संकल्पों की बीमारी'** ही लग जाती है;

इसकी बजाय सर्वमान्य भगवदी या संत के ही वचन से,

प्रत्यक्ष स्वरूप में प्रभुजी जहाँ जोड़ें वहाँ, सम्यक् प्रकार से जुड़ जाना।

इसके फलस्वरूप, **'अन्य सभी बड़े स्वरूपों में भी महाराज ही प्रगट हैं'** –

यूँ माना जाएगा और दिखाई देगा।

फिर सर्वदेशीयता दृढ़ होने पर, सम्यक् निर्दोषबुद्धि भी जीतेजी ही दृढ़ हो जाएगी।

प.पू. बापा तो अक्षरधाम का दिव्य सुख बख़्शिश में देकर गए हैं;

उसे संपूर्ण रूप से स्वीकार करके अब **'एकांतिकभाव'** सिद्ध कर लेना है।

प.पू. पप्पाजी भारपूर्वक कहते हैं–

किसी की भी माथापच्ची में या उसे सुधार देने में पड़े बिना,
उसके लिए केवल प्रार्थना ही करनी - जिससे हर प्रकार से सर्वत्र पुष्टि ही होती रहेगी।
आओ, हम सब इस हेतु दृढ़ संकल्प करके – **प्रतिज्ञा करके**
गुणातीत ज्ञान को व्यापक बनाएं।
सर्वत्र – 'दिव्यता ही दिव्यता' और आनंदपूर्वक सेवाभक्ति करते जाना।
ऐसी जोड़ करके, सभी परम सुखी रहो
यही गुणातीत समाज की परम सेवा करी मानी जाएगी।
तो, सभी राजी रहना।

– प.पू. काकाजी महाराज, 12 जून 1982

अनंत प्रकार के मंत्र और महामंत्र विधिपूर्वक ही करने के तरीके और उसके मुताबिक उनके फल शास्त्रों में बताए हैं। लेकिन श्रीजी महाराज ने **सर्वोत्तम - सर्वश्रेष्ठ मंत्र 'स्वामिनारायण'** बताया है। इस मंत्र को कहीं भी जपने से श्रेयार्थी मुमुक्षु अवश्य कल्याण के मार्ग पर ही अग्रसर होता है – यह साबित हुआ है। लेकिन जीतेजी ही अक्षरधाम का अपरंपार दिव्य सुख प्राप्त करने के लिए यह मंत्र जीवन में प्रगट करना पड़ता है!

और... इस हेतु किसी का दोष, स्वभाव, प्रकृति, क्षतियाँ, त्रुटियाँ देखे करे बिना, प्रगट स्वरूप का – नामी सहित नाम का भजन, ज्ञान, ध्यान, कथावार्ता इत्यादि दिव्यभावना के सतत अनुसंधान से घड़ीभर तो होनी चाहिए। तो, जैसे तांत्रिक विद्या के फलरूप शक्ति और सामर्थ्य पैदा होती है; यूँ, वचनामृत मध्य 62 के मुताबिक आधी घड़ी भी इन्द्रियों - अंतकरण और जीव एकाग्र होकर, शुद्धभाव से भजन करते हुए प्रगट स्वरूप में जुड़े और संबंध वालों में दिव्यभाव रख कर, सत्पुरुष के वचन से सेवा - भक्ति किया करे, तो प्रारब्ध और तामसिक कर्मों का बिल्कुल नाश होकर अखंड सतयुग ही बरतेगा और सुहृद्भाव के सिद्धांत से जीवन जीते हुए अक्षरधाम का निर्गुण सुख, जीतेजी ही प्राप्त होगा।

यह रहस्य प.पू. योगीजी महाराज ने अब व्यापक स्वरूप में सभी के लिए मौज रूप में खुल्ला करके, उसकी प्रतीति कराई है। **प्रगट स्वरूप को मिलने और मानने पर आंतरिक द्वंद रहना नहीं चाहिए।** दिल की सच्चाई से अंतर्दृष्टि करके, गुरुदेव को ही तीव्रता से हम पुकार करें, तो परेशानी, विक्षेप और राग - द्वेष टल जाएंगे। सो, गुरुहरि कृपादृष्टि करके अब वह बिल्कुल टाल दें और समग्र सत्संग के प्रति 'दिव्य भावना' प्रगटती जाए – यही अभ्यर्थना।

– प.पू. काकाजी महाराज, 1968

एक और अद्वितीय
श्रीजी महाराज और स्वामी

'श्रीजी महाराज और स्वामी, एक व अद्वितीय रह कर इस पृथ्वी पर पधारे; वे फिर न आए हैं न आएंगे'

यह कहने का रहस्य यह है कि सभी अवतारों के अवतारी पुरुषोत्तमनारायण ने पहली बार मानवदेह धारण करके, कारण व महाकारण के भाव टालने के लिए आत्यंतिक कल्याण की अनोखी रीति अख्तियार करी - **अखंडित रखी**।

यूँ, सनातन गुणातीत भावना को मूर्तिमान करके
आत्मा - परमात्मा के अनादि स्वरूपों का ज्ञान सभी के लिए
यावच्चंद्रदिवाकरौ सुलभ बनाया।

मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामी के जन्म स्थान महातीर्थ - भादरा में
सत्संग सप्ताह के दौरान
गुरुहरि योगीजी महाराज ने यह रहस्य समझाते हुए बताया था कि
वैराटनारायण में से सभी अवतार प्रगट होते हैं; सो, वैराटनारायण बड़े हैं,
फिर भी उनकी उपासना की अपेक्षा रामकृष्णादि अवतारों -
जिन्होंने मानव देह धारण की हो,
उनकी उपासना विशिष्ट शक्तिशाली एवं प्रतापी गिनी जाए
और
उन्हें लक्ष्य में रख कर जो कुछ भक्ति - भावना -आराधना करने में आती है,
वह ऐसे अवतारों के अंतर्धान होने के बाद भी,
चैतन्य स्वरूप से भूमंडल में उन्हें पहुँचती है।
यूँ, वैराटनारायण के उपासक में संस्कार ही पड़ते हैं,
जबकि रामकृष्णादि के उपासक में संस्कार पड़ने के अतिरिक्त
उसका कल्याण भी होता है।
लेकिन, वे अवतार अब परोक्षभाव से ही भजे जाएंगे;

सो, दीर्घ काल में कल्याण होता है।
हमारे लिए तो मानवदेह में महाराज पधारे;
सो, *'एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो'* इस उक्ति के मुताबिक,
एक ही प्रणाम से अंतकाल में हमारा आत्यंतिक कल्याण तो पक्का है ही,
लेकिन विशिष्टता यह है कि वह प्राकट्य अखंडित रहने से,
उस स्वरूप को पहचान कर एक ही प्रणाम करने से,
हमें जीतेजी ही आत्यंतिक कल्याण की अनुभूति, सुख, शांति और आनंद मिलता है।
इस प्रकार, सर्वावतारी पुरुषोत्तमनारायण ने मानवदेह धारण किया,
अनंत चरित्र किए, अद्‌भुत ऐश्वर्य-प्रताप दिखाए
और
21 वर्ष की आयु में
एक-एक अवतार जैसे एक साथ 500 चुनिंदे महारथी संत बना कर,
गुणातीत स्वरूप या तद्‌वद् भाव को पाए मुक्तों द्वारा
अपना प्रागट्‌य धरती पर अखंडित रख कर,
सभी के लिए जीतेजी आत्यंतिक कल्याण सुलभ किया!
यूँ, आज प्रगट के श्रेयार्थी उपासक गुरुहरि योगीजी महाराज की स्मृति के साथ
जो कुछ भजन, भक्ति, सेवा, कीर्तन, धुन, ध्यान करें –
उस भावना को हाथ-पैर आकर मूर्तिमान बनते हैं
और
तत्काल अर्चिमार्ग से चैतन्य के प्रवाह के रूप में
प्रगट के संबंध से महाराज, स्वामी और मुक्त साक्षात् उन्हें ग्रहण करते हैं।
फलस्वरूप जीव का मायिकभाव टल जाता है
और
वह जीतेजी अक्षरधाम का सुख प्राप्त करता है।
तो, महाराज के इस प्रागट्‌य दिन पर
महाराज के ऐसे ही प्रगट स्वरूप प.पू. स्वामीबापा का अनुसंधान रख कर,
परिताप करके जहाँ जो समाज **'स्वामिनारायण महामंत्र'** जपता हो,
वहाँ-वह दिव्यता और सुहृद्‌भाव से जीता हो जाए
और
गुरुहरि को हम से जो करवाना है,
वह जल्दी ही सिद्ध हो

और

स्वभावरहित होकर सभी अक्षरधाम का सुख प्राप्त करने लगें –

यही प्रार्थना!

स्वामिनारायण भगवान की शक्ति इस प्रकार पृथ्वी पर और खासतौर से भारत में खुल्लम - खुल्ला प्रगट होकर, व्यापक स्वरूप में क्रियाशील हो गई है।

तो, **'विश्वधर्म'** की सर्वजीवहितावह गुणातीत भावना - उनके संतों द्वारा प्रवर्त कर,

पत्ते - पत्ते से स्वामिनारायण का भजन करवाने का

मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामी का संकल्प

धीरे - धीरे सिद्ध होता जाए – यही श्रीहरि की जयंती के मंगलकारी दिन पर प्रार्थना.....

– प.पू. काकाजी महाराज, 1969

रामनौमी

चार प्रकार के सवार

'प्रगट की परावाणी' (पुस्तक) में चार प्रकार के सवार के दृष्टांत से
संत समागम के फलस्वरूप 'मूर्ति' के (चार प्रकार के) अखंड धारक बनते बताया है।
मन से 'मूर्ति' को पकड़ कर जो धारक बने,
वह सवार ऐसा कि – वह चढ़े, फिर गिर पड़े – यूँ चढ़ता गिरता रहे।
उसे ज्वार-भाटे आते रहते हैं।
एक बार भीतर में आनंद वर्तता है,
तो दूसरी बार खालीपन – सूनापन महसूस करे... कुछ सूझे नहीं।
यानि कि – कौन मिला है ? इसका एहसास रहे और चला जाए, रहे और चला जाए।
ऐसे सवार ने ट्रेनिंग नहीं ली है, अभ्यास किया नहीं है।
सो, उसे कुछ समय ऐसे एकांतिक (संत) के साथ रह कर, प्रॅक्टिस कर लेनी चाहिए।
तब जाकर ऐसे भगवदी के समागम से वह **'चाबुक सवार'** बनता है।

वह घोड़े से गिरता नहीं, लेकिन चाबुक से काम लेता है और दौड़ाता है।
यानि कि – साधन का बल लेता है; ऐसे स्वरूपानंदस्वामी!
मन की वृत्ति से, प्रगट मूर्ति को पकड़ते थे। सतत तेलधारावृत्ति!
ऐसा हो – वह तप से, त्याग से, आत्मनिष्ठा से, वैराग्य से, स्वधर्म से, सेवा से –
यूँ, एकाग्रवृत्ति से वचनामृत प्रथम 56 के मुताबिक भगवान को अपने बस में रखे।
पहले की अपेक्षा वह बढ़ कर है।
चमक-दमक दिखाई पड़े – सिद्धाई दिखाई दे, सद्गुरु जैसा लगता हो।
पहले की अपेक्षा उसकी भक्ति भी तेज – वेगवान बनती है
और
वह सत्संग का सुख प्राप्त करता है। यूँ, वह मूर्ति का धारक तो है।
उसे जैसे जँचे, वैसे स्वतंत्र रूप से इंद्रियाँ-अंतःकरण का उपयोग करता है।
ध्यान जँचे, तो ध्यान; सेवा जँचे, तो सेवा, और कुछ जँचता हो, तो वो!
लेकिन, फिर भी यह उसकी अपनी रीति है-अपने मायिक मन से है।
सो, यदि उसे संत का संबंध न हो, तो वह विपरीत माहौल की चपेट में आ जाए।
इससे आगे –

जिस तरह **कुलसवार** दौड़ते-दौड़ते भी चाहे कैसी ही परिस्थिति क्यों न हो,
वह दो-दो घोड़ों पर सवार रहता हुआ,
आगे-पीछे जाकर ख़ुद का निशान स्थापित रख सकता है;
उसी प्रकार, ऐसा मुक्त गुणातीत के संबंध से या भगवदी के प्रसंग से
आत्मबुद्धि और प्रीति दृढ़ करके, अति कठिन संजोगों में भी,
कसौटी में से गुज़र कर 'प्रगट की निष्ठा' टिका सकता है
और
उसे विपरीत हालात कभी भी डिगा नहीं सकते।
ऐसे को खेलना आता है और वह माया से डरता नहीं है।
माया में फँसा हुआ लगता हो, तो भी उसमें से वह निकल सकता है;
उसके बंधन में वह नहीं आएगा।
यहाँ समझदारी आई। इसलिए,
किसी साधन के बिना वो स्वतंत्र रूप से-बुद्धि से 'मूर्ति' को पकड़ सकता है।
चाबुक सवार की भाँति मन और चित्त रूपी चाबुक का वो उपयोग नहीं करता।
परंतु, असाधारण ऐश्वर्य प्रताप मिलने के कारण उसे मस्ती आ जाती है
और
स्वभावप्रेरित भक्ति रूप क्रिया करने के कारण
'स्वरूप की मर्जी' कुछ गौण हो जाती है।
सो, उसे मूर्ति की स्मृति नहीं रहती है। इसीलिए महाराज ने कहा कि–
ऐसे महामुक्त हों-सिद्धदशा वाले हों-लेकिन ऐश्वर्य प्रताप आने पर उस प्रभाव में आ जाते हैं और फिर
उतरते जैसे–हीन कक्षा के भी रहेंगे या नहीं, इसका मुझे डर रहता है।
लेकिन, **संबंध वाले मुक्तों की महिमा युक्त सेवा करने से**
वह महारथी बन जाता है–मूर्ति का **'अखंड धारक'** बनता है।
स्वतंत्र रूप से भी भगवान का ही कार्य करते रह कर
'स्वामीसेवकभाव' सहज रखता है।
वह जहाँ जाता है, वहाँ उस जीव को ब्रह्म रूप करके,
भगवान में जोड़ कर परम सुखी करता है।
ऐसा **'अखंड धारक सवार'** हमें बनना है।
ऐसा धारक बनने के लिए **'सरलता युक्त सुहृद्भाव'** अनिवार्य है।
सो, गुरु गुणातीत ने कहा कि जितना सुहृद्भाव, उतना ही ब्रह्मभाव,

और... वह साधन से नहीं, परंतु स्वरूप के बल से-उनकी कृपा से-
उनकी सैद्धांतिक प्रसन्नता से हो पाएगा
और
वहाँ निर्मानीभाव और संबंध की महिमा चाहिए ही...
मूर्ति के ऐसे अखंड धारक बन कर, साधुता के गुण प्राप्त करके,
ऐसे जीवन मुक्त, सर्वत्र मूर्ति की सिद्धदशा वाले बनते रहें
और... ऐसे निर्दोषबुद्धि वाले जीवन मुक्तों का एक दिव्य समाज बढ़ता ही रहे,
ऐसी इस नए वर्ष पर गुरुचरणों में प्रार्थना!

– प.पू. काकाजी महाराज, 1970

आत्यंतिक कल्याण के लिए **भगवान श्री स्वामिनारायण** ने अनेक साधनों में, आसरा रूपी एक ही साधन बताया।

जीतेजी ही अक्षरधाम की प्राप्ति के लिए **मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामी** ने संबंध वाले संतों के प्रति सद्भावना और माहात्म्य ज्ञान सहित भक्ति बताई।

दुर्लभ से दुर्लभ ऐसे एकांतिकभाव के लिए, **ब्रह्मस्वरूप गुरुवर्य शास्त्रीजी महाराज** और **गुरुहरि योगीजी महाराज** ने गुणातीत ज्ञान के नवनीत के रूप में '**निर्दोषबुद्धि**' का एक ही साधन बता दिया।

यूँ, जीव को तत्काल ही अतिशय बल प्राप्त कराने के लिए वचनामृत मध्य 7 और मध्य 63 के मुताबिक, सभी सिद्धांतों और महामंत्रों का भी परमरहस्य मंत्र– '**धाम, धामी और मुक्तों की प्रगट की निष्ठा**' में आ जाता है। इस प्रकार प्रभु, महाप्रभु और महातमप्रभुओं की दिव्यभावना से सेवा करने वाले को, जीव में तत्काल अतिशय बल मिलता है। यूँ, सरलता और सुगमता से जीतेजी ही, ब्राह्मीस्थिति प्राप्त करने के लिए, श्रेयार्थी साधक को 'नामी सहित नाम' का महामंत्र सिद्ध करके, एकांतिकभाव दृढ़ कर लेना होता है। इस हेतु, ब्रह्मसूत्र के रूप में-प्रगटस्वरूप की अखंड स्मृति, एकांतिक सत्पुरुष की अनुवृत्ति और चार भगवदी के साथ सुहृद्भाव – यह सैद्धांतिक बात अब खातिरीपूर्वक प्रमाणित हो चुकी है।

तो, हम सभी गुरुमुखी बन कर उसे अमल में लाकर आजमाएँ और जीतेजी ही अक्षरधाम के सुख को प्राप्त करें– यही अभ्यर्थना।

– प.पू. काकाजी महाराज, 1969

पाँच प्रकार के समर्पण

प्रभु को सही मायने में समर्पित होना, यही सच्चे सेवक का परम पवित्र फर्ज है। सभी शास्त्रों और हर एक धर्म के अवतार पुरुषों ने भी प्रभु को समग्रभाव से समर्पित होकर, उस परमतत्त्व की प्रेमपूर्वक आराधना करना-इसे ही सच्ची भक्ति कहा है। चाहे फिर वह किसी भी तरीके से हो - सखाभाव से, सखीभाव से, वात्सल्यभाव से, दासभाव से या मधुरभाव से; लेकिन इन सभी की जड़ में सनातनस्वरूप के साथ, **अनन्यभाव से** एक विशिष्ट आध्यात्मिक संबंध अनिवार्य बताया है। हमारा मार्ग ***'तपस्या'*** का नहीं है, ***'समर्पण'*** का है।

भजन के, आराधना के, प्रेमपूर्वक जुड़ने के या समर्पण के मुख्यतः पाँच प्रकार हैं। पहला प्रकार **मछली के बच्चे समान** भजन का है। लेकिन, जैसे ज्वार-भाटे के दौरान या पानी की प्रचंड लहरों के कारण जल से अलग होते ही मछली की मृत्यु हो जाती है, वैसे ही विपरीत परिस्थिति या प्रसंग से, ऐसे भक्त का अनुसंधान टूटने पर, प्रभु के स्वरूप से संबंध टूट जाएगा-संबंध रहेगा नहीं।

दूसरा प्रकार **बंदर के बच्चे** का है। यहाँ बच्चा माँ को पकड़े ही रखता है-उसे चिपके ही रहना पड़े; वर्ना तो अलग होते ही खाई में गिर जाए और मृत्यु को पाए। इसी तरह सेवक यहाँ स्व-प्रयत्न से या खुद के बल से भगवान के प्रगट स्वरूप की निष्ठा टिकाए रखने का प्रयत्न करता रहता है। लेकिन प्रसंगों की एकधारी-लगातार विषमता में या अतिविपरीत परिस्थिति में निष्ठा का बल टूट जाने पर सत्संग से गिर जाने की संभावना रहती है।

सो, इससे बढ़िया तीसरे प्रकार का - **बिल्ली के बच्चे का मार्ग** है। यहाँ 'माँ' ही बच्चे को पकड़े रख कर, सात घर घुमा कर, बच्चे की आँखें खोल कर उसे खेलता कर देती है। बच्चा खाली 'म्याऊँ - म्याऊँ' ही करता रहता है। लेकिन, माँ के पकड़े रहने पर वह यदि इधर-उधर हिले-डुले तो, बिल्ली द्वारा पकड़ टाईट करने पर, उसे दाँत लग जाता है। इसलिए **ऐसे समर्पण में सरलता से ही वर्तना पड़ता है।**

महाराज ने हम पर खूब दया करके ऐसे पवित्र गुणातीत पुरुषों का जोग दिया है - संबंध करा दिया है। तो, हमारा फर्ज है कि बिल्ली के बच्चे के समर्पण के इस

मार्ग को अपनाते हुए, उन्हें राजी कर लेने का प्रयत्न ही हम किया करें और महिमा ही गाते रहा करें। हम मोहताज़ हों, लेकिन संत को कभी मोहताज़ न करें। तो, हमारी हर प्रकार की जिम्मेदारी ऐसे संत की है। **ऐसा सेवक यदि भगवान के प्रगट स्वरूप के साथ बहुत सरलता से वर्ते और उनकी मर्जी के मुताबिक की निर्दोषबुद्धि युक्त सेवा करता रहे, तो संत उसे थोड़े ही समय में उत्कृष्ट स्थिति पर पहुँचा देते हैं।**

लेकिन, इस प्रकार के समर्पण में समकक्षा के साथीदारों के साथ, सेवक को समूह में जीना नहीं आता। इसलिए हमारे लिए - यानि बुद्धिप्रधान एवं भावनाप्रधान मनुष्य के लिए - इससे भी अधिक अच्छे चौथे प्रकार के – **मुर्गी के बच्चे जैसे मार्ग** को - उत्तम प्रकार के समर्पण का मार्ग गिना जाता है। यह मान्यता नहीं, वस्तुतः हक़ीक़त है।

शुद्ध मुमुक्षु, यदि –
सिद्ध पुरुष के नहीं, बल्कि ऐसे सच्चे संत के जोग में आने पर –
बुद्धिमत्ता से नहीं, बल्कि दिल की सच्चाई से
व
अनादि काल के मन के कपट और लुच्चेपन को छोड़ कर, मानसिक प्रामाणिकता से,
किसी सिद्धि के लिए नहीं,
लेकिन केवल प्रभुमिलन के लिए ऐसी तीव्र तमन्ना रखता हो
या
उस परमतत्त्व की अनुभूति करने की तन्मयता वाली
आराधना करता हो या आसक्ति रखता हो, तो –
चौथे प्रकार का मुर्गी के बच्चे जैसा यह समर्पण बिल्कुल सरल और संभव बन जाता है।

स्वामी की बात प्र.3 की 31 के मुताबिक ऐसे परम एकांतिक पुरुष – वृत्ति से, दृष्टि से या मुर्गी की तरह पास रख कर, सभी सेवकों का एक साथ सेवन करके, ग्रुप में सुहृद्‌भाव से वर्तना सिखा कर उन्हें निर्दोष बनाते हैं – स्वतंत्र बनाते हैं और जीतेजी सुखी कर देते हैं। (मुर्गी के बच्चों को यदि देखेंगे तो वे हमेशा अपनी माँ के इर्दगिर्द ग्रुप में ही घूमते - फिरते दिखाई पड़ेंगे, क्योंकि मुर्गी उनको यही सिखाती है।) बिल्ली या कुत्ते यदि मुर्गी के बच्चे को परेशान करने आ भी जाएं, तो मुर्गी खुद ही सामना करके अपने बच्चों की रक्षा करती है। इसी प्रकार, ऐसे सच्चे सद्‌गुरु भी बाह्य या भीतर के हमलों से सेवक की रक्षा कर लेते हैं।

यदि ऐसी शुद्ध भावना में थोड़ी देर भी कोई टिक पाए, तो सच्चे सद्‌गुरु, सेवक का जतन करके उसके ढेर पाप सम्पूर्णतया निर्मूल कर डालते हैं-

खाक कर देते हैं। इस तरह सच्चे सद्गुरु अनंत पतित जीवों को, यूँ संबंध से जीवंत एवं जाग्रत, श्रद्धावान, मुमुक्षु और पवित्र बना कर, जीवनमुक्त बनाते हैं।

और... **पाँचवें प्रकार के, श्रेष्ठ समर्पण में स्वेच्छा से मर-मिटने वाले शूरवीर पुरुष के समर्पण** के लक्षण सन्निहित हैं। सच्चे सत्पुरुष के प्रसंग में आने पर, ऐसे शुद्ध मुमुक्षु को यह समर्पण अपने आप सहज ही सिद्ध होता है - करना नहीं पड़ता। **गुरु भी अद्भुत, तो ऐसा शिष्य भी अद्भुत!** यहाँ सेवक संत को अपना मन संपूर्ण सौंप देता है। खुद का कोई भी आग्रह नहीं, ठहराव नहीं, कोई निजी राग नहीं, खुद की महत्त्वाकांक्षा नहीं। लेकिन, केवल दिव्यभावसहित वह संत की मर्जी में ही निरंतर वर्तता रहता है। जब तक किसी का भी चुभे-अभाव आए, भावफेर हो या बेसुरा लगे, तब तक मन सौंपा नहीं कहा जाता। **जीव सौंपना और मन सौंपना ये दोनों चीजें अलग हैं। मन सौंपे बिना सत्पुरुष की प्रसन्नता फिसलती नहीं। महिमा समझ कर, केवल विश्वास रख कर मन सौंपना – यही सच्चा व श्रेष्ठ समर्पण है।** ऐसे सेवक के हृदय में आनंद अखंडित रहता है। **मन सौंपा यानि अखंड दिव्यभाव!** ऐसा सेवक हर एक प्रसंग पर 'तू ही - तू ही' करा करता है। फिर ऐसे सेवक को प्रभु बुद्धियोग देते हैं। तब, वह चौबीस घंटे संत की मर्जी में ही वर्तता है... वह प्रभुमय बन जाता है। मन सौंपने पर एक निराकार अवस्था का प्रारंभ हो जाता है और फिर दिव्य संबंध और अधिक दृढ़ होता जाता है। फिर 'मैं' और 'तू' की भूमिका उड़ जाती है और ऐक्य प्रगट होता है।

ऐसे शुद्ध मुमुक्षु को भगवान ढूँढ रहे होते हैं। गुरुवर्य शास्त्रीजी महाराज और योगीजी महाराज - ऐसे दिव्य विभूतिपुरुष - मानवरूप में यूँ विचर कर गए। हर एक को उसकी कक्षा पर मूर्ति देकर गए और अपना लहू बहा कर करुणा से व 'भगवान हमारे सुख-दुःख में भागीदार' यूँ हमारे व्यवहार में भी शामिल हुए। हमारे स्वभाव को भी प्रेम से अपना कर, बाहर निकाल कर, अत्यंत क्षमावान बन कर, सह कर निर्मूल किया। ऐसे अतिसमर्थ पुरुषों की तो बात ही अनोखी!

पाँचवें प्रकार का ऐसा समर्पण शुद्ध मुमुक्षु का *तत्काल* जीवन परिवर्तन कर सकता है। स्वामी की बात में कहे मुताबिक योगी बापा कई बार कहते –
गाय है, वह बछड़े के लिए दूध छोड़ती है; वैसे ही शिष्य यदि गुरु को मन सौंप दे, तो गुरु प्रसन्नता बहा देता है और अंतःकरण का अज्ञान टाल देता है।

अंतःकरण का अज्ञान क्या? **जब तक खुद की आत्मा को ब्रह्मरूप नहीं माना जाता, तब तक अज्ञान है। जब सत्पुरुष को मन सौंप दें यानि कि बड़े पुरुष की मर्जी में रहें और वे जो कहें वैसे करें, तब वे अज्ञान निकाल देते हैं।**

स्वामी की बात में कहा है – *'कोई सर्वस्व अर्पण कर दे, ऐसा हो; कोई देह को नहीं गिने, ऐसा हो और इन्द्रियों - अंतःकरण को भी न गिने ऐसा हो, लेकिन तीन प्रकार के देह के भाव को न गिने, ऐसा नहीं मिलता। ये बातें दिल में टिके - जमे और 'मैं ब्रह्मरूप हूँ ही' यूँ मानना पक्का हो, तब निर्विघ्न रूप से अक्षर के भाव को पाएंगे। जो जीतेजी ही मरना सीखे और मरने को तैयार हो, उसे यह बात सिद्ध हो सकती है।'* यूँ, **ब्रह्मस्वरूप संत के साथ ब्रह्मभाव से जुड़ना - यही अंतिम कक्षा का समर्पण है।** सो ही, मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामी ने प्र. 11 की 167 में अद्भुत व भव्य बात की – *आज ही ऐसा आत्यंतिक स्वरूपज्ञान सिद्ध हो सके ऐसा है।*▲ लेकिन, यह हम सब की कमनसीबी है कि उनकी इस अपरिमित करुणा, उनके आग्रह, उनके उस दिव्य प्रेम का संबंध हम पहचान नहीं सकते। उनके प्रेम को झेल नहीं सकते। फिर भी, वे करुणासागर हमें निभाते हैं, आगे लेते हैं और सीढ़ी के मार्ग पर कदम-कदम, धीरे - धीरे, जीव की कक्षा के मुताबिक, शुद्धिकरण करके 'ब्रह्मरूप' का पक्का करा देते हैं, और फिर... जीव में बैठ जाते हैं।

यह वारसा अभी भी कायम ही है। तो, हम सभी ऐसा अद्वितीय आध्यात्मिक संबंध दृढ़ कर लें और अखंड वर्तमान में ही रह कर अक्षरधाम के अखंड सुख का, शांति का, आनंद का, बल का लाभ उठा लें।

इसी को ही माना जाए कि अत्यधिक सच्चेभाव से सत्संग किया और तभी प्रारब्ध व प्रकृति बदल जाने पर सुख-सुख से जीवनमुक्त दशा का, ऐसी स्वतंत्रता का, निर्दोषता का आनंद प्राप्त करके, अन्य को भी दे सकते हैं।

हर रोज इस रहस्य की बात का अनुसंधान रख कर, जब खाली हों तब जुगाली करने की लगनी लगा दोगे, तो इस मंगलकारी अवस्था में अखंड रहने लग जाओगे और संबंध में आने वाले को भी उतना ही सुखी कर पाओगे। जीतेजी ही अक्षरधाम की, यही सच्ची प्राप्ति है। तो, सभी सिद्ध कर लें यही अभीप्सा!

– प.पू. काकाजी महाराज, 1975

▲ प.पू. काकाजी खुद भी मर्म में कई बार बोलते कि – *आध्यात्मिक ज्ञान का दाता, आज तुम्हारे सामने सोफे पर बैठा है।*

भावात्मक एकता

महाराज ने श्रीनगर (अमदावाद) में **'पूर्णमानव'** के प्रतीक रूप 'नर - नारायण' की पहली मूर्ति पधराई और आदर्श भी स्पष्ट रख कर, 'खुद तो पर के पर ही हैं'– इस रहस्य का, वचनामृत में इन्हें (नर-नारायण देव को)
राहबर रूप बता कर, निर्देश किया;
लेकिन, मूर्तिमान रीति से वढवाण (गाँव) में अक्षरपुरूषोत्तम की मूर्तियों का रहस्य प.पू. शास्त्रीजी महाराज ने समझाया
और
गोंडल में प.पू. योगीजी महाराज द्वारा सिद्ध किया। तो, प्रगट के साधकों को सबसे पहले **सनातन**, सर्वमान्य, प्रगट और युगल उपासना का–
अक्षर और पुरूषोत्तम का –ब्रह्म और परब्रह्म का - आत्मा और परमात्मा का 'गूढ़तम रहस्यम् रहस्य ' समझ लेना पड़े
और
महाराज का **सर्वोपरिभाव** (सुप्रीमसी)–अखंड प्राकट्य
जीव में पक्का दृढ़ करना पड़े।
तब ही **'भावात्मक एकता'** के बीज बोए जाते हैं।
वर्ना तो, भेदभाव-अलगाव और अस्मिता के सूक्ष्म रूप जड़ में ही-बीज रूप में ही छिपे हुए रह जाते हैं।
और... विकास क्रम में आगे जाकर प्रगट होकर
सैद्धांतिक–मान्यताओं के और सांप्रदायिक
बड़े भेदभावों के रूप में खड़े हो जाते हैं।
यही है हमारा 20,000 वर्ष का आध्यात्मिक इतिहास!
लेकिन गुणातीत ज्ञान में–
मानसिक दायरा, किसी भी धार्मिक मत, बौद्धिक मीमांसा या तार्किक सिद्धांतों
या
शब्दों के दाँवपेचों में से
बालक की भाँति निर्दोषभाव से निकल जाकर, आख़िर अनंत में प्रवेश करके

प.पू. काकाजी महाराज के आध्यात्मिक वारिस

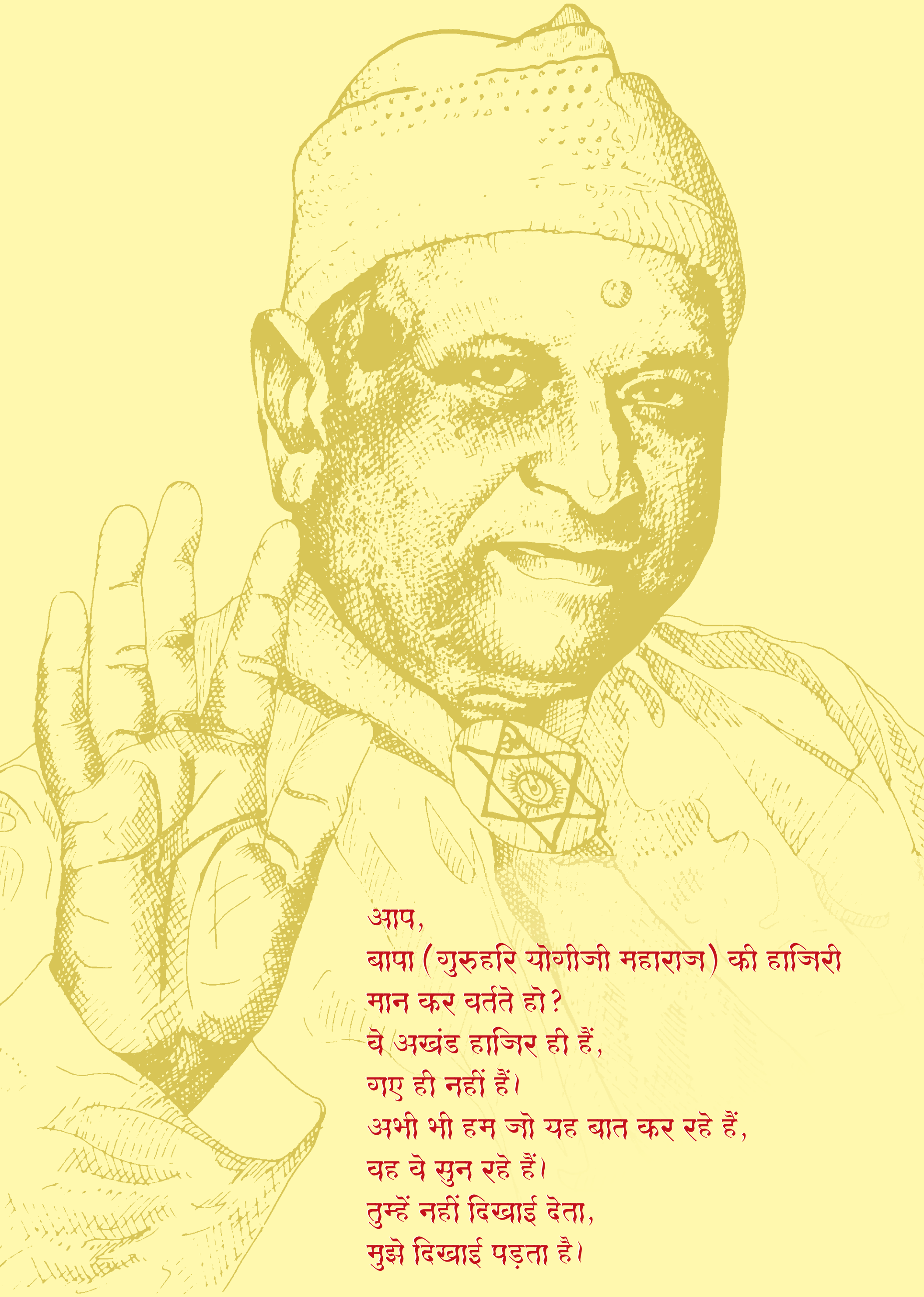

आप,
बापा (गुरुहरि योगीजी महाराज) की हाजिरी
मान कर वर्तते हो?
वे अखंड हाजिर ही हैं,
गए ही नहीं हैं।
अभी भी हम जो यह बात कर रहे हैं,
वह वे सुन रहे हैं।
तुम्हें नहीं दिखाई देता,
मुझे दिखाई पड़ता है।

प्रभु की सर्वोच्च परात्परता और अत्यधिक विशाल विश्व व्यापकता प्रगट करनी है।
'अहम्' – जो कि सभी विरोधों का केन्द्र है,
उसे कोने - कोने से कुरेद कर, खींच कर भी - पकड़ कर - खत्म कर डालना है।
और तब...
सभी संघर्षों को **स्वरूपलक्षी सामर्थ्य से** संवादिता में परिवर्तित कर सकेंगे।
हमें तो **अंतरात्मा** में **अखंड ही बैठे** प्रभु की प्रेरणा से चलते रहना है।
केवल उनकी ही प्रेरणा - मर्जी के मुताबिक!
संकल्प की बीमारी तनिक भी न हो - सिर्फ प्रभु की ही मर्जी;
'बुखार की बीमारी या काल की भाँति!'
सबसे पहले आप प्रत्यक्ष स्वरूप के साथ अंतर का ही संबंध अति दृढ़ करो।
वचनामृत कारियाणी 12 के मुताबिक –
अंतर की आँखों से उन्हें पहचानने पर ध्यान और वचन से, कारण शरीर टलता है एवं
तब जाकर भगवदी के 'प्रसंग' से ही 'संकल्प की बीमारी' टलती है
और... महिमा समझ में आने पर
महाराज और संत का - प्रत्यक्ष अवतार और प्रत्यक्ष संत का –
गुरुहरि और गुरु का जैसा है, वैसा यथार्थ स्वरूप तत्त्व से जब पहचाना जाता है,
तभी उस जीव को **'निर्विकल्प उत्तम अति, निश्चय तव घनश्याम' –**
जो कि पहले संबंध से हुआ था, वह अब (वचनामृत लोया - 12 के मुताबिक)
स्थिति से दृढ़ होता है।
यहाँ अक्षर में - अनंतस्वरूप में प्रवेश करके परब्रह्म के धारक बनना ही पड़ता है
और... अनंत ब्रह्मांड उसके रोम - रोम पर क्षुद्र विराट बुद्बुदों की भाँति उड़ते हों,
ऐसा अनुभव होता है।
यह हक़ीक़त है।
गुणातीत ज्ञान में यह तथ्य प.पू. भगतजी, प.पू. जागास्वामी
और
प.पू. अदा ने सिद्ध किया था।
इसीलिए, शुद्ध गुणातीत परंपरा में सबसे पहले
गुणातीत स्वरूपों के रूप में वे प्रसिद्ध हुए!
यही परंपरा - गुणातीत परंपरा अखंडित रही और रहेगी ही
और... इसी हेतु
यह शताब्दी जाहिर में और इतने जोर - शोर से सर्वत्र मनाई गई।

शास्त्रीजी महाराज और योगीजी महाराज की इस परम रहस्य की बात का प्रतिपादन, हर जगह करना है।

ऐसे गुणातीत ज्ञान के संत को –

1) रागद्वेष होगा ही नहीं
2) निरंजनानंदस्वामी की तरह 'शांति देने की'
उसकी सहज स्थिति तो सभी को महसूस होगी ही।
3) वह अखंड स्थितप्रज्ञ रह कर - ब्रह्मस्वरूपभाव में वर्तेगा
और
'सत्त्व-रज-तम' के गुण में बह जाकर स्वधर्म चूकेगा नहीं
और
मूर्ति भूलेगा नहीं
व
कभी कैसे भी संजोगों में समता खोए बिना,
दिव्य कॉन्सियसनेस में अखंड वर्तेगा।

सो, यहाँ अभाव–अवगुण, भेदभाव, संकुचितता, अहम्‌भाव
व
असमता के लिए तो स्थान है ही नहीं।

मूल में प.पू. बापा का ही जीवन विचारने जैसा है।

भंवरी जैसा चिंतन करे वैसी, वो हो जाए; यूँ ब्रह्म के गुण आएं ही।

तो, प्रत्यक्ष गुणातीत सत्पुरुष का सेवन जो भी करे–उसमें ब्रह्म के गुण आएं
और
तभी निरंतर अनुवृत्ति प्रगट हो
और
सर्वत्र '**भावात्मक एकता**' विकसित होती दिखाई पड़े।
सर्वदेशीयता और समग्रता का वहाँ ख्याल पड़े
और
एकता व संवादिता का अनुभव सहज ही हो।

'योगी परिवार के हम सभी एक ही!'

- ज़रा-सी भी दूरी या अंतराय रहित का,
- आत्मबुद्धि और प्रीति का,
- उच्च कोटि की समझदारी व प्रेम का,
- एकता और संवादिता वाला दिव्य जीवन ही, वहाँ विकसित होता दिखाई पड़े।

सभी में **मूलतत्त्वों के निरूपण की एकवाक्यता ही** हो।
सिद्धांतों की ज़रा भी माथापच्ची नहीं हो
और
सुहृद्भाव, सुरुचि व निर्दोषबुद्धि के ही अस्खलित पूर बहते हों।
हमारी **मानसिक भूमिका** बिल्कुल टल जाने पर, सभी को उसका अनुभव होगा।
मुक्त जैसे-जैसे **अंतर्दृष्टि और प्रार्थना करेंगे**,
वैसे-वैसे ऐसे ब्रह्मनियंत्रित समाज
और
उसके नियामक का दर्शन एवं लीला का
ख्याल पड़ता जाएगा।

महाराज की ही सर्वोपरि सत्ता का स्वीकार
और
अखंड दिव्यता-दिव्यता ही या एकांतिकभाव
चैतन्यमाध्यमों में सहज सिद्ध हुआ होगा
और...
उनके द्वारा ही - सर्वदेशीयता प्रगटेगी एवं सत्संग का विकास होता जाएगा।
फिर वहाँ कोई भी खींचातानी, हकदावा, विरोध या निरोध, स्वीकार और अस्वीकार– ऐसा कुछ भी नज़र में ही नहीं आता।
सब कुछ प्रभु नियंत्रित ही! एवरीथिंग–एवरी मॉमेन्ट डिवाईन एन्ड टोटली सुपरमॉस्ट!
और
तब सभी का एक ही लक्ष्य रहता है–प्रभुप्राप्ति!
मानवजाति को उर्ध्वगामी बना कर-प्रभु की ओर आत्मानुभूति कराना!
तब सभी संघर्षों का वहाँ अंत आ जाता है और जीतेजी ही अक्षरधाम माना जाता है।
अब मोह या शोक रहा ही कहाँ?
उसकी (प्रभु की) लीला ही सर्वत्र दिखाई देगी
और
उसे जिस तरीके का रोल अदा करना होगा, उसका स्पष्ट ख्याल पड़ जाएगा।
यूँ, वह महाराज की पल-पल की सर्वोपरि सत्ता की
एवं
प्रत्यक्ष स्वरूप में अखंड दिव्यभाव की दृढ़ता रख कर
लोकहित और एकांतिक धर्म की सिद्धि के लिए दिव्यकर्म ही करता रहता है।
यही ज्ञानसमाधि है।

दैवी गुणों की उपलब्धि और उनका सर्वत्र विकास
व
सहजानंदी कॉन्सियसनेस तथा सहजावस्था!
यूँ, प्रकरण 1 की 336 और 4 की 107 वीं बात के मुताबिक
आप 9 जने ही **एक ही रुचि** और फिर **दृढ़ सुरुचि** से उठाव लें, तो –
प्रकरण 1 की 330 वीं बात के मुताबिक
प्रभु को, **मारकूट कर** जीव को ब्रह्मरूप करना नहीं पड़े।
वर्ना, सभी को ही गुणातीत करने का वचन है; सो एकांतिक बना कर ही रहेंगे।
तो सुख - सुख से क्यों न करें?
प.पू. बापा के अनुग्रह वाली बख़्शिश क्यों न पचाएं?
सुज्ञेषु किं बहुना?
...तो, रुचि और रहस्य तो पता है और अमल में आता जा रहा है।
लेकिन अनुवृत्ति और अभिप्राय के मुताबिक की पराभक्ति
व
संबंध वालों में – समस्त सत्संग में सर्वत्र दिव्यता, एकता और संवादिता
प्रगटाने के लिए हम सभी अंतर से निर्णय पक्का करके
संयुक्तभाव से ही लग पड़ें।
तभी गुणातीत की द्विशताब्दी सच में मनाई मानी जाएगी
और
प.पू. बापा भी प्रसन्नता बरसाएंगे ही।
यूँ, 'भावात्मक एकता' में से महाराज के साथ
विशिष्ट दिव्य एकता - अद्वैत और विशिष्ट अद्वैत –
सभी दृढ़ कर लें, यही अभ्यर्थना –

– प.पू. काकाजी महाराज, मई-1985

सत्संग में 'कुसंग' और मुक्तों की 'माया'!

*[प.पू. गुरुजी ने 30 मार्च 2003 की सुबह घर-घर के मुक्तों की सभा में व शाम को प.पू. काकाजी की स्मारक डाक टिकट जारी होने के साथ अपने प्रागट्योत्सव की सभा में मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी के समय के **'भक्तराज शिवलाल सेठ'** की मिसाल देते हुए बहुत ही मार्मिक बात करी; जो, प.पू. स्वामिजी को खूब ही जँची थी। आओ, इस पुस्तक के अंतिम पड़ाव में प.पू. गुरुजी द्वारा कृपावर्षा रूपी गुणातीत ज्ञान के सार को समझ कर प्रगट संत से संबंध दृढ़ करने के लिए तत्पर हों...]*

प.पू. काकाजी कहते –

'जीवन का प्रवाह जिस प्रकार बहता है, उसके द्वंद्वों से परे होने के लिए,
दिव्यतत्त्व जो कि मानवरूप में प्रगट हुआ, मूर्तिमान हुआ उसके साथ
अर्जुन की तरह सखाभाव से या गोपियों की तरह मधुरभाव से
या
*हनुमान की तरह दासभाव से, **अनन्यभाव का संबंध** दृढ़ करना पड़ता है।*
प.पू. योगीबापा ऐसा वारसा रख कर गए हैं।
लेकिन, वह संबंध हमारे तरीके का नहीं – सच्चा दिव्य संबंध,
जहाँ चाहे कैसे भी प्रसंग बनें या किसी भी परिस्थिति में
आत्मीयता खंडित हो ही नहीं।'

प.पू. काकाजी की यह बात गुणातीतभावना में प्रवेश करने निकले हर एक श्रेयार्थी साधक के लिए दीपस्तंभ समान है। गुणातीतभाव को पाई **ऐसी ब्रह्मस्वरूप विभूतियों के केवल अनुग्रह से ही प्रकृतिपुरुष से पर की भूमिका में हम स्थिर हो सकेंगे।** यह बात हमने खूब सुनी और करी। अरे! भजन भी खूब किया। परंतु किसी न किसी वृत्ति के कारण या गुण की कॉन्सियसनेस के कारण या अन्य प्रभाव के कारण हमारे जीव में यह बात ठहर नहीं पाई कि – ***'इस साधु से ही मेरा मोक्ष हो पाएगा, सो उसका संग छोड़ना नहीं है।'*** (प्र - 5,121) और... 'खुद मावजीभाई' होने के जंजाल में भी हम रमते रहे...

विचार को पाएं कि – आज से करीब 160 वर्ष पहले,

❋ जिसके पास दस लाख रूपयों की नकद पूँजी थी...

अर्थात् **पैसे-टके से जो समृद्ध थे,**

* जिस पर सद्गुरु आत्मानंदस्वामिजी व अनादि मूल अक्षरमूर्ति **गुणातीतानंद-स्वामिजी की अखंड ममतामयी** दृष्टि थी,
* परिवार में शादी के अवसर पर आई साली, जो कई दिनों तक उसे भोजन परोसती रही, फिर भी उसकी ओर कभी नज़र न गई होने के कारण, ख्याल ही नहीं पड़ा कि साली अभी भी उनके यहाँ ही है, ऐसे जो **विरक्त और स्वधर्म में चुस्त थे,**
* हर रोज एक ही रास्ते से आने -जाने के बावजूद मार्ग में बनी नई हवेली की ओर जिसकी निगाह न जाए, ऐसी जिसकी **दृष्टि और वृत्ति अंतराभिमुख थी,**
* संसार की अनेक झंझटों और खूब चलते धंधे की व्यस्तता में भी जो 4 से 5 घंटे निर्विकल्प रूप से प्रभु की मूर्ति में ध्यानस्थ रह सकते थे – यूँ **आत्मा से भी जो समृद्ध थे और...**
* सत्संग के सद्गुरु, बड़े-बड़े संत तथा आचार्य श्री रघुवीरजी महाराज भी जिनकी श्रीमंताई से नहीं, बल्कि स्वधर्मनिष्ठा और भक्ति के कारण जिन्हें अत्यंत आदर से देखते!

सत्संग के बीम समान, ऐसे **बोटाद के शिवलाल सेठ** को एक बार भरी सभा में **सद्गुरु गुणातीतानंदस्वामिजी** ने टोकते हुए कहा –

'तेरे मन में (तू) यूँ समझता है कि मैंने गढडा में मूर्ति प्रतिष्ठा करवाई और भावनगर में रघुवीरजी महाराज पधराए, यह बहुत बड़ा काम किया; परंतु तेरे जीव के सामने देखता हूँ, तो वहाँ तो ***आधा ही सत्संग रहा है...*** *ऐसे साधु को छोड़ कर जो - जो सुख की इच्छा करनी, वह तो जैसे एक दिन गाय का बछड़ा खूंटी से छूट कर गौशाला में गया और समझे कि दूध का सुख ले लूं। वहाँ तो पड्ड़े थे, तो (जैसे ही) मुँह लगाए कि लातें पड़ें। लातें खाते-खाते मुँह तो सूज गया और दूध का सुख भी नहीं मिला; इतना ही नहीं, पर जब बछड़े की माँ आई, तब उससे भी दूध नहीं पी पाया। ठीक इसी प्रकार ऐसे साधु को छोड़ कर और कहीं सुख लेने जाना, यह तो लातें खाने जैसी बात है। क्योंकि वे आज्ञा-उपासना में बाधा डालेंगे और तब ऐसे साधु के पास नहीं बैठ पाओगे, जैसे गाय का बछड़ा गाय (अपनी माँ) के पास नहीं जा पाया। यह कह कर स्वामी बोले कि* ***दो महीने तक यूँ बातें करूँगा, तब पहले जैसे तुम्हारा जीव भगवान में जुड़ा हुआ था, वैसा जुड़ पाएगा।*** *इतना तुम में स्थूलभाव आ गया है और ये बातें तो भगवान में जुड़ जाने की हैं।'* (स्वामी की बात प्र -3,21)

इसलिए ही प.पू. काकाजी कहते – *'सत्संग यानि सत्पुरुष!'*

इसी तरह फिर एक बार स्वामी ने शिवलाल सेठ से पूछा– *आज कहाँ गए थे?*

सेठ ने कहा– *आज तो शहर में गया था और एक रसोई लेकर आया हूँ।*

तब स्वामी ने पूछा– *रसोई कैसी?*

शिवलाल सेठ ने कहा– *एक जगह से सोना खरीद कर दूसरी जगह पर बेचा था, उसमें डेढ़ सौ रूपये की कमाई हुई, उसकी रसोई!*

तब स्वामी बोले– *वह तो ठीक, परंतु जैसे सोना खरीदने का विचार उठा; यूँ सौ करोड़ मन भूसा खरीद कर कमाई कर लें, ऐसा संकल्प किसी दिन उठा है क्या?*

यह सुन कर शिवलाल बोले– *नहीं महाराज!*

तब स्वामी बोले– *'बड़े साधु की निगाह में तो, महाराज की मूर्ति के सिवा प्रकृति पुरुष तक सारा भूसा ही है; अन्य किसी चीज में माल नहीं दिखाई पड़ता। सो, तुमने* ***इतनी देर तक ऐसे साधु के दर्शन और बातें गवाँ कर भला क्या कमाई करी?'***

यूँ कह कर बुद्धि का आडंबर टाल दिया।

इसे ही तो प.पू. काकाजी कहते थे न– *'शुभ संकल्प भी नहीं!'*

बाकी, सत्संग के प्रति के ममत्व के कारण बाजार से मंदिर आते हुए, सौदा करके रुपये 150 कमा कर, मंदिर के लिए रसोई लाने में क्या गलत किया?

स्वामी ने खुद ही तो अथक् परिश्रम से उसके अंतर को ऐसा घड़ा था कि 'माया' उसे छू ही न पाए– बाहर का कुसंग तो उसे बाधारूप हो ही नहीं सकता था।

लेकिन, वर्षों पहले हमने प.पू. काकाजी से सुना है–

'गढडा का कुत्ता भी जूनागढ़ के साधु को भौंके।'

सत्संग का वह कुसंग कहें या **मुक्तों की माया** कहें – उसमें शिवलाल सेठ फँस गया और **गढडा वालों की मोहब्बत के कारण उनके बहकावे में** आकर **'जूनागढ़ के उस जोगी' के प्रति के दिव्यभाव और अनन्यनिष्ठा में फर्क पड़ गया-दूरी आ गई थी!**

इसीलिए तो **'आधा सत्संग रहा है'** ऐसे शब्द स्वामी को कहने पड़े! अर्थात् – तेरे पीछे किया हुआ मेरा परिश्रम सत्संग में रहे कुसंग के कारण व्यर्थ न हो, इसकी मर्म में चेतावनी दी।

यूँ, किसी निजी अधिकार से, उसकी आत्मा के श्रेय के लिए ही, सहज करूणा से मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंदस्वामिजी ने उनके साथ के संबंध में पड़ी गांठ-दूरी को ज़रा भी नज़रअंदाज नहीं किया!

इससे स्पष्ट होता है कि **हमारी बाह्य या आंतरिक समृद्धि या स्वधर्मपरायणता या नैतिकता या सद्गुणों और नियम-धर्म या मर्यादा का सयानापन हमें**

प्रकृतिपुरुष से परे की भूमिका में ले जाने के लिए बिल्कुल निरर्थक ही है। वहाँ तो प्रकृतिपुरुष से परे की ऐसी ब्रह्मस्वरूप विभूति के साथ – **अतिशय बड़े सत्पुरुष के साथ अनन्यभाव से दृढ़ किया दिव्य संबंध ही काम आता है! इस संबंध में दरार पड़ जाए - दूरी आ जाए, तो हम में रहे सारे के सारे सद्‌गुण भी अभद्र हैं।**

परोक्ष में भी भीष्मपितामह, युधिष्ठिर या सुधन्वा जैसी स्वधर्मनिष्ठ, आत्मनिष्ठ विभूतियाँ भक्ति, सिद्धदशा वगैरह में अजोड़ और अप्रतिम थीं। दूसरी ओर **अर्जुन** - जहाँ गया वहाँ से सुंदरियों को उठा ले आया, लेकिन **अनन्यभाव से वह श्री कृष्ण से ही जुड़ा रहा।** स्वयं की सभी निजी मान्यताओं - महत्त्वाकांक्षाओं, जीवनशैली, सगे - संबंधियों के प्रति की ममता की अवहेलना करके, केवल श्री कृष्ण भगवान के अभिप्राय की भक्ति में वह जुड़ गया। किसी भी प्रकार के सैद्धांतिक आदर्श, सात्त्विकता, सामाजिक प्रतिष्ठा या नियम - मर्यादा, श्री कृष्ण के प्रति की भक्ति में से उसे रंचमात्र भी डिगा नहीं सके। तो, **प्रभु ने उसे नारायणस्वरूप बना कर 'नर - नारायण' रूप में अपने साथ पुजवाया!**

अध्यात्म मार्ग के हम सभी पथिकों को यह रहस्य समझ कर, खूब सावधान रहना जरुरी है कि ऐसी कोई 'अच्छाईपेशी' या 'वाहवाही' की सात्त्विक भूख के कारण, प्रतिष्ठा की चमक - दमक में, प्रभु ने हमें जिस अतिशय बड़े पुरुष के साथ जोड़ा हो - उसके साथ के संबंध में दरार तो नहीं आई, न?

प.पू. काकाजी तो – 'सर्वदेशीय विभूति' – यह हम सभी जानते हैं। लेकिन, अनन्यभाव से वे सिर्फ प.पू. शास्त्रीजी महाराज और प.पू. योगीजी महाराज के थे – यह भी हम सभी समझते हैं।

प.पू. पप्पाजी ने भी कहा है –

महाराज ने हमें सबसे पहले जहाँ जोड़ दिया हो,
उसके द्वारा ही हमारी साधना सरल और स्पीडी रहेगी।

तो, प.पू. काकाजी के 'साक्षात्कार की स्वर्णस्मृति' जब हम मना रहे हैं तब, उनकी जीवनशैली को ही सतत नज़र समक्ष रख कर - हम भले कैसे भी हों – लेकिन अन्य सभी में दिव्यभाव और पूज्यभाव रखते हुए, अतिशय बड़े पुरुष के साथ का अपना सच्चा अनन्य संबंध किसी भी कारण, कभी भी रंचमात्र गौण नहीं होने दें और उनके अभिप्राय की भक्ति में कभी भी कमी न आए – यही भगवान स्वामिनारायण, शास्त्रीजी महाराज, योगीजी महाराज और गुरुहरि काकाजी महाराज तथा सभी प्रगट गुणातीत स्वरूपों के चरणों में प्रार्थना!

– प.पू. गुरुजी, 30 मार्च 2003

श्री स्वामिनारायण स्तवन

पाप का घोर अंधेरा, जब इस धरती पर छा जाए,
मानव रूप में ईश्वर कोई, ऐसी जोत जगाए,
जो फैले तो सारे जग में, उजियारा फैलाए।

जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण
जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण

भक्तिदेवी, धर्मदेव के चरणों की थी दासी,
कौशल देश में बसे छपैया, गाँव के थे ये वासी,
रामनौमी शुभ दिवस वर्ष था, सत्रह सौ इक्यासी,
रात के दस बजते ही, घर आँगन की मिटी उदासी।

पुत्र जन्म पे देव लोक से, इनको मिली बधाई,
फूल खिला तो इनके जीवन की, बगिया मुस्काई,
कृष्ण पुजारी मात-पिता की, भक्ति ये रंग लाई,
इनके सुंदर बेटे ने भी श्याम छवि ही पाई।

जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण
जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण (1)

तीन मास का जब वो, नन्हा बालक होने आया,
पंडित मार्कडेय ने उसका, उज्ज्वल भविष्य बताया,
कुंडली देखी, रेखाओं से कुछ अनुमान लगाया,
बोले पंडित इस बालक में, है भगवान समाया।

तेजस्वी की जान पे इक दिन, किया किसी ने वार,
पेड़ गिरा और दब कर पापी, छोड़ गया संसार,
नगरी में जब होते देखा, पाप का कारोबार,
छोड़ छपैया, बसा अयोध्याजी में ये परिवार।

जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण
जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण (2)

धर्मदेव थे पंडित ज्ञानी और महाविद्वान,
पिता से बालक ने भी पाया, ज्ञान और विज्ञान,
छोटी सी आयु में छाने, सारे वेद पुराण,
ऐसी बुद्धि, इतनी विद्या, लोग हुए हैरान।

धर्मदेव को विद्वानों की, सभा में गया बुलाया,
साथ पिता के होनहार, बालक भी काशी आया,
ज्ञान गोष्ठी में कुछ ऐसा, चमत्कार दिखलाया,
सात साल का बालक, दिग्गज विद्वानों पर छाया।

जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण
जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण (3)

मात पिता को हरि, हरि को मात पिता थे प्यारे,
साल ग्यारहवां लगा, विधि ने छीने सभी सहारे,
पहले माता, बाद पिताजी, अक्षरधाम सिधारे,
बन के त्यागी, तजे हरि ने जीवन के सुख सारे।

त्यागी सुख की शैया, आसन दूर्वा का अपनाया,
बगल में गुटका, हाथ कमण्डल, माथे तिलक लगाया,
बांध के मलमल के टुकड़े में, शालिग्राम उठाया,
तोड़ जगत के मिथ्या बंधन, घर से बाहर आया।

जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण
जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण (4)

सरयू नदी को पार किया और आया वो कैलाश,
सर्दी गर्मी सिर पे झेली, भूख न देखी प्यास,
कोना - कोना पर्वत छाना, कहीं न था प्रकाश,
लगन हो जिसकी सच्ची, उसका क्या डोले विश्वास।

मिले कई पाखंडी साधु, नाम के नंगे बाबा,
ब्रह्मज्ञानी होने का झूठा, करते थे जो दावा,
छल से भरा था जीवन जिनका, जो थे एक छलावा,
इनमें रह कर, इन्हें जान कर, हुआ बहुत पछतावा।

जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण
जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण (5)

बन की ओर चला जो, पर्वत से कर लिया किनारा,
मुक्तानाथ के मंदिर भी, आया वो बालक प्यारा,
सूर्यदेव की कड़ी तपस्या, की पाया उजियारा,
फिर इक और घने जंगल में पूरा साल गुजारा।

फिरते - फिरते इक दिन बन में, हुआ जो संध्याकाल,
इक बूढ़े बरगद के नीचे, योगी मिला गोपाल,
योग अष्टांग सिखा कर उसने, जीवन किया निहाल,
उस बन से निकला और पहुँचा नीलकंठ बंगाल।

जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण
जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण (6)

धर्मी राजा सिद्धवल्लभ ने, सिरपुर में ठहराया,
नीलकंठ ने बरखा का, चौमासा वहीं बिताया,
फिर कामाक्षा देवी मंदिर, में आसाम वो आया,
शक्ति से एक मायावी के, जादू को झुठलाया।

नौलक्खा गिरि ढाका में, एक यज्ञ हुआ था भारी,
यज्ञ में हुए इकट्ठे लाखों, योगी इच्छा धारी,
नीलकंठ के चरण पड़े तो, शोभा हो गई न्यारी,
इनके दर्शन करके योगी, हुए बहुत आभारी।

जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण
जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण (7)

रामानंदस्वामी जो उद्धवजी का, थे अवतार,
उनके दर्शन की अभिलाषा, जागी मन के द्वार,
गुरु बिना गत नाहि, लेकर ये आदर्श विचार,
नीलकंठजी ग्राम लोजपुर, आए काठियावाड़।

भेंट हुई तो स्वामिजी ने, बढ़ कर गले लगाया,
शक्ति को पहचाना, इनकी सेवा का सुख पाया,

पिपलाणा में नीलकंठ को, सहजानंद बनाया,
जेतपुर में अपनी गद्दी पर, इनको बिठलाया।

जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण
जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण (8)

गुरुदीक्षा मिली तो माँगे, शिष्य ने ये वरदान,
भोजन, वस्त्र से वंचित न हो, करे जो मेरा ध्यान,
भक्तों का हर संकट, हँस कर झेलें मेरे प्राण,
अंत समय रस्ता दिखलाऊँ, बन कर मैं अगवान।

जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण
जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण (9)

जब आचार्य बने वो थी, बस उन्नीस वर्ष की आयु,
नया समाज बनाया, करके नए नियम कुछ लागू,
नैनों में था तेज, तो उनकी वाणी में था जादू,
कालवाणी में एक रात सब किए इकट्ठे साधु।

धर्म की रक्षा करने के, कुछ प्रश्न सामने आए,
अपनी वाणी से संतों के, शीतल मन गरमाए,
संत पाँच सौ, एक इशारे पर चरणों में आए,
शिखा कटा कर, पहन के अल्फी, परमहंस कहलाए।

जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण
जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण (10)

नगरी-नगरी धर्म-कर्म का, करवाया प्रचार,
दुनिया को करना सिखलाया, मानवता से प्यार,
जोबनपगी–से जाने कितने, डाकू दिए सुधार,
मोक्ष दिला कर एक वेश्या का, कीन्हा उद्धार।

धर्म, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के उपदेश सुनाए,
ऊँच-नीच के बंधन तोड़े और सत्संग लगाए,
जगह-जगह भक्तों की मेहनत, से मंदिर बनवाए,
सहजानंदजी कलियुग के, पहले अवतार कहाए।

जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण
जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण (11)

तीस साल की लंबी अवधि, गढडा बीच बिताई,
इक मंदिर में अपनी प्रतिमा, अपने हाथ सजाई,
'मानव रूप में नारायण हूँ', कह कर जोत जगाई,
निज में बसे ईश की पूजा की, जग से करवाई।

अंत समाधि लेने की जब ठानी, पास बुलाया,
और मूल अक्षर गुणातीत को, मठाधीश बनाया,
ज्योत से ज्योत जगाए रखना, गुरु ने ये समझाया,
अपनी शक्ति सौंप दी उसको, ऐसे गले लगाया।

जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण
जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण (12)

गुणातीत समाज बना कर, पाया सबसे मान,
इस धरती पे कोई न जन्मा, ऐसा संत महान,
स्वामी सहजानंद ने, ऐसे दीप की ज्योत जगाई,
जिसके डर से अंधियारों की, कोख न पलने पाई,
इक तन से दूजे तन में ये, ज्योति आन समाई,
चलती रहेगी परंपरा जो, अब तक चलती आई॥

जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण
जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण
जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण
जय जय स्वामिनारायण, जय जय स्वामिनारायण (13)

‘स्वामिनारायण महामंत्र’ महिमास्तवन

ओSSS.... स्वामिनारायण मंत्र है जीवंत, जपो निरंतर संत की स्मृति संग॥
स्वामिनारायण जय जय स्वामिनारायण - 2

ओSSS.... भाव कुभाव से नाम जो लेगा, कल्याण का अधिकारी बनेगा॥
स्वामिनारायण जय जय स्वामिनारायण - 2

ओSSS.... आधि व्याधि उपाधि टाले, जीव से विषय वासना निकाले॥
स्वामिनारायण जय जय स्वामिनारायण - 2

ओSSS.... भूत पिशाच इस मंत्र से भागें, निष्ठा हो दृढ़ सद्‌बुद्धि जागे॥
स्वामिनारायण जय जय स्वामिनारायण - 2

ओSSS.... काले नाग का ज़हर उतारे, स्वामिनारायण मंत्र उच्चारे॥
स्वामिनारायण जय जय स्वामिनारायण - 2

ओSSS.... सर्वोपरि मंत्र बलशाली, विघ्नहर्ता परम हितकारी॥
स्वामिनारायण जय जय स्वामिनारायण - 2

ओSSS.... प्रकृति का परिवर्तन कर दे, प्रारब्ध से जीव निर्बंध कर दे॥
स्वामिनारायण जय जय स्वामिनारायण - 2

ओSSS.... काल, कर्म, माया से बचाए, अंत में अक्षरधाम दिलाए॥
स्वामिनारायण जय जय स्वामिनारायण - 2

ओSSS.... अंतकाल स्वामिनारायण बोले, ब्रह्ममहोल के द्वार वो खोले॥
स्वामिनारायण जय जय स्वामिनारायण - 2

ओSSS.... अष्ट प्रहर, अखंड भजे जो, ब्रह्मरूप उसका जीव करे वो॥
स्वामिनारायण जय जय स्वामिनारायण - 2

ओSSS.... नामी सहित नाम ये जपेंगे, भव-भव के सब पाप जलेंगे।।
स्वामिनारायण जय जय स्वामिनारायण - 2

ओSSS.... काकाजी धुन के राजा तुम, आर्षदृष्टा, प्रेरककर्ता तुम।।
स्वामिनारायण जय जय स्वामिनारायण - 2

ओSSS.... स्वामिनारायण धुन सिखाई, योगी की पहचान कराई।।
स्वामिनारायण जय जय स्वामिनारायण - 2

ओSSS.... प्रगट की महिमा समझाई, प्रत्यक्ष करने की करामात बताई।।
स्वामिनारायण जय जय स्वामिनारायण - 2

ओSSS.... जपो निरंतर हर क्रिया में, स्वामिनारायण बसो हृदय में।।
स्वामिनारायण जय जय स्वामिनारायण - 3

मंत्रयोग

शब्दब्रह्म की शक्ति साकार स्वरूप में प्रगट होती है।
मंत्र का अर्थ और रहस्य समझ कर जाप करना।
नामी सहित नाम का जाप करना
और
प्रगट का भाव हृदय में दृढ़ हो जाए तब
ध्यान यानि— महिमा का विचार करना।
कौन मिला है ? कैसा मिला है ? मुझे कैसा संबंध हो गया ?
उस दिव्य संबंध से मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ - ऐसी भावना दृढ़ करनी।
तत्पश्चात् जो प्रेरणा हो, वैसा जीवन जीना।
उसके फलस्वरूप सचेतन, साक्षीभाव प्राप्त होता है
और
प्रभु को ही सर्वत्र कर्ता - हर्ता माना जाता है,
जिससे कि हम निर्भय हो जाते हैं।

आपके दादुकाका के
शुभाशिष सह जय श्री स्वामिनारायण।

सात करोड़ मंत्र हैं।
यह महामंत्र (स्वामिनारायण) प्रगट और जीवंत है।
तुरंत फलदायी है।
जीव को ब्रह्मरूप कर देता है।

योगी परिवार
अमृत आनंदोत्सव 2012
'Caring' thy name is Guruji